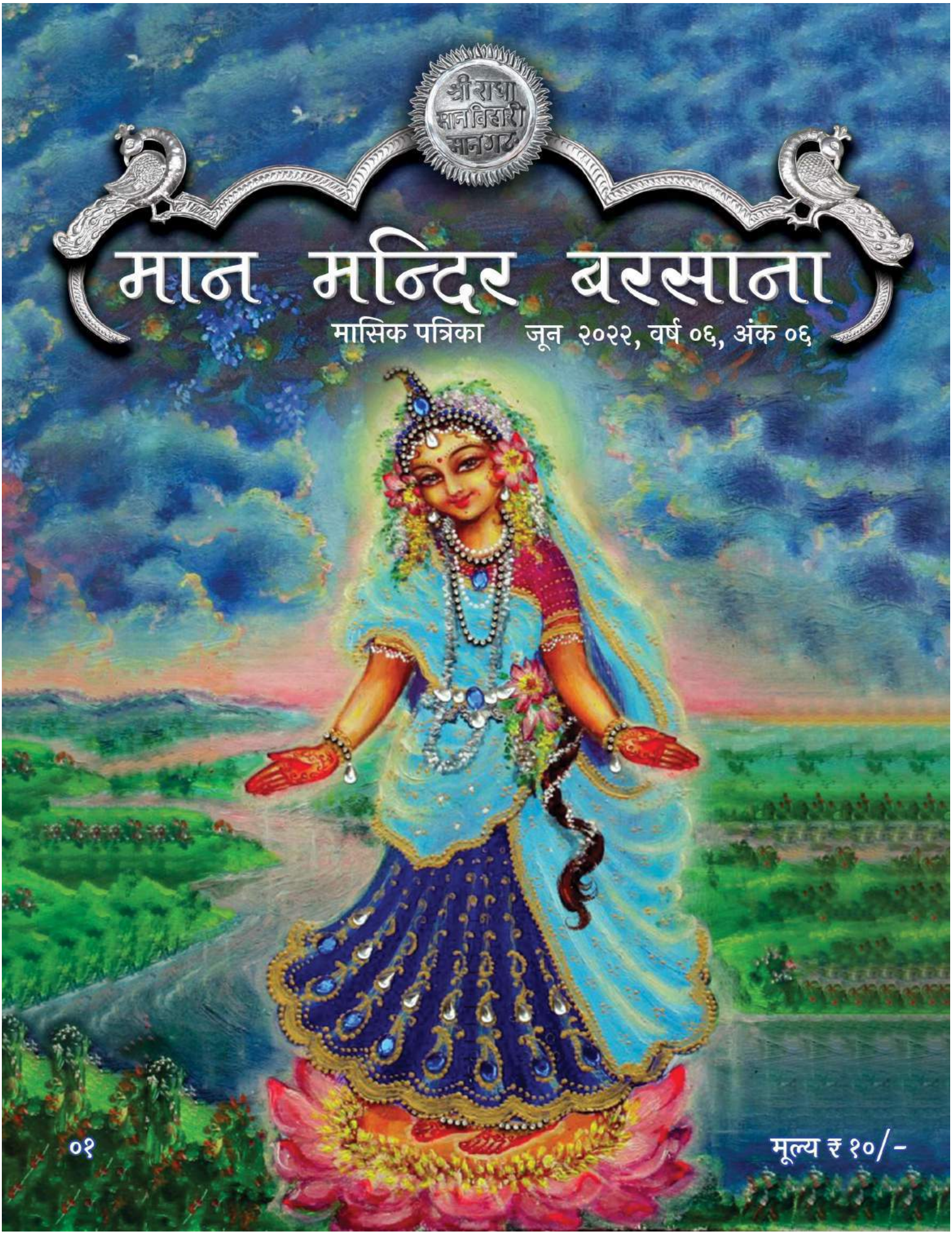

मान मन्दिर बरसाना

मासिक पत्रिका जून २०२२, वर्ष ०६, अंक ०६

०१

मूल्य ₹ १०/-

मानसा (पंजाब) में पूज्या व्यास साध्वी श्री मुरलिका जी द्वारा श्रीमद्भागवत कथा

अनुक्रमणिका

विषय- सूची **पृष्ठ- संख्या**

१ श्रीब्रज-वसुन्धरा का स्वरूप ०५
२ 'प्रेम' से ही प्रियतम-प्राप्ति.....०७
३ साक्षात् श्रीभगवद्-रस 'श्रीसंत-सन्निधि'....१०
४ हनुमत्-पद्धति का कीर्तन.....१२
५ सृष्टि-संरक्षिका 'श्रीनामाराधना.....१५
६ महाभागवत 'श्रीभीष्मजी'.....१८
७ भक्ति का आभूषण 'क्षमाशीलता'.....२०
८ श्रीभक्तमाल-सुमेरु 'गोस्वामी तुलसीदासजी'२२
९ भक्त-आसक्ति से भव-मुक्ति.....२४
१० भक्ति वश्य भगवान्.....२७
११ 'गौसेवा' से सर्वकाम सुलभ.....२९
१२ 'कॉन्वेंट स्कूल' से 'भारतीय शिक्षा-संस्कृति' का ह्रास.....३१
१३ असंगता से समता.....३३

किशोरी लाड़ली राधे तेरे दर पै मैं आई हूँ,

किशोरी लाड़ली राधे, तेरे दर पै मैं आई हूँ,
जिसे ठुकराया दुनिया ने, वही दिल लेके आई हूँ।
तुम्हारे जिन चरण की श्याम भी, करते सदा पूजा,
उन्हीं चरणों में खाली हाथों को, मैं ले के आई हूँ।
तुम्हारी भेंट को तो, मेरी आँखों में नहीं आँसू,
यही इक टीस छोटी सी, हृदय में ले के आई हूँ।
चढ़ाऊँ क्या भला मुझसा, नहीं दुनिया में है निर्धन,
हमारी धन तुम्हीं तो हो, यही सुनकर मैं आई हूँ।
सुना है तुम अनाथों को, शरण देती हो श्री राधे,
यही सुनकर किशोरी जी, तेरे ही शरण आई हूँ।
सुना जिसका न कोई साथी हो, न कोई सहारा,
मैं बिलकुल बेसहारे हूँ, सहारे तेरे आई हूँ।

- पूज्य श्री रमेश बाबा जी कृत

संरक्षक- **श्रीराधामानबिहारीलाल**

प्रकाशक – **राधाकान्त शास्त्री, मानमंदिर सेवा संस्थान,**
गह्वरवन, बरसाना, मथुरा (उ.प्र.)
mob. राधाकांत शास्त्री 9927338666
ब्रजकिशोरदास.....6396322922
(Website :www.maanmandir.org)
(E-mail :info@maanmandir.org)

श्रीमानमंदिर की वेबसाइट www.maanmandir.org के द्वारा आप प्रातःकालीन सत्संग का ८:०० से ९:०० बजे तक तथा संध्याकालीन संगीतमयी आराधना का सायं ६:०० से ७:३० बजे तक प्रतिदिन लाइव प्रसारण देख सकते हैं।

परम पूज्यश्री रमेश बाबा महाराज जी द्वारा सम्पूर्ण भारत को आह्वान –

"मजदूर से राष्ट्रपति और झोंपड़ी से महल तक रहने वाला प्रत्येक भारतवासी विश्वकल्याण के लिए गौ-सेवा-यज्ञ में भाग ले।"

*** योजना ***

अपनी आय से १ रुपया प्रति व्यक्ति प्रतिदिन निकाले व मासिक, त्रेमासिक, अर्धवार्षिक अथवा वार्षिक रूप से इकट्ठा किया हुआ सेवा द्रव्य किसी विश्वसनीय गौ सेवा प्रकल्प को दान कर गौ-रक्षा कार्य में सहभागी बन अनंत पुण्य का लाभ लें। हिन्दू शास्त्रों में अंश मात्र गौ सेवा की भी बड़ी महिमा का वर्णन किया गया है।

विशेष:- इस पत्रिका को स्वयं पढ़ने के बाद अधिकाधिक लोगों को पढ़ावें जिससे आप पुण्यभाक् बनें और भगवद्-कृपा के पात्र बनें। हमारे शास्त्रों में भी कहा गया है –

सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च तपो दानानि चानघ। जीवाभयप्रदानस्य न कुर्वीरन् कलामपि॥ (श्रीमद्भागवत३/७/४१)

अर्थ:- भगवत्तत्त्वके उपदेश द्वारा जीव को जन्म-मृत्यु से छुड़ाकर उसे अभय कर देने में जो पुण्य होता है, समस्त वेदों के अध्ययन, यज्ञ, तपस्या और दानादि से होनेवाला पुण्य उस पुण्य के सोलहवें अंशके बराबर भी नहीं हो सकता।

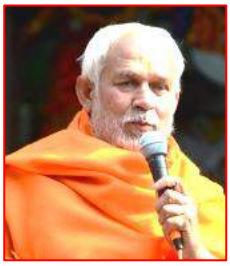

प्रकाशकीय

'सत्संग' की अनन्त महिमा है। एक क्षण का सत्संग जीव को परात्पर तत्त्व का साक्षात्कार करा सकता है। बालक ध्रुव हो या बालक प्रह्लाद, जिन्होंने सत्संगसुधा का पानकर अमरत्व प्राप्त किया। यही नहीं, जितना सत्संग प्रभावी है, कहीं उससे अधिक कुसंग का भी प्रभाव देखा जाता है। एक क्षण 'वेश्या के साथ किसी शूद्र का मिलन' देखकर पुण्यशील विप्र अजामिल घोर नारकीय बन गया परन्तु वह भी महापुरुषों के एक क्षण के दर्शन से अधोगति से बच गया। अतः सर्वप्रथम तो संग के विषय में सतत सावधान रहना चाहिए। महापुरुषों की रहनी परम मंगलकारक होती है, उनके कृतित्त्व व व्यक्तित्त्व से हमें सदा सीखना चाहिए। ब्रज-वसुन्धरा के परमोपासक संत प्रवर पूज्य श्रीरमेशबाबाजीमहाराज ने अपनी ७० वर्ष की 'साधना' जिस प्रकार ब्रजभूमि के अनन्याश्रय में की और सदा निःसंग व निष्काम कर्म करते हुए जीव-कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया, उसके प्रभाव से न जाने कितने ही जीवों को सन्मार्ग का अवलम्बन मिला। वास्तव में यह ब्रजभूमि सदा से संत-महापुरुषों से सुशोभित रही है, ऐसे महापुरुषों की महिमा का वर्णन किया नहीं जा सकता। एक दृष्टान्त मिलता है कि एकबार नारदजी 'श्रीहरि' के पास 'सत्संग की महिमा' जानने के उद्देश्य से गये। श्रीभगवान् ने कहा कि नारदजी ! उस वन में जाओ जहाँ एक शमी वृक्ष पर एक गिरगिट रहता है, वह आपको इस महिमा से अवगत कराएगा। नारदजी यथास्थान पहुँचकर गिरगिट से प्रश्न करने लगे परन्तु वह उसी क्षण परलोक सिधार गया। नारदजी ने समस्त वृत्तान्त भगवान् को सुनाया और प्रभु ने पुनः उन्हें किसी धनिक के यहाँ भेज दिया जहाँ पिंजड़े में तोता रहता था; उससे सत्संग-महिमा जानने को कहा। नारदजी के साथ पुनः वही घटा, तोता भी परलोकवासी हो गया। फिर से नारदजी ने भगवान् को सम्पूर्ण घटना बतायी; तो अबकी बार श्रीप्रभु ने उन्हें राजा के यहाँ नवजात शिशु के पास भेजा। नारदजी वहाँ भी पहुँचे परन्तु शंका बराबर बनी रही कि कहीं राजपुत्र भी न मर जाय और मुझे राजा के कोप का भाजन बनना पड़े।

राजपुत्र ने कहा कि नारदजी ! आपके दर्शनमात्र से गिरगिट 'तोता' बना और तोता 'राजपुत्र' बना और अब मैं सीधे 'श्रीहरि' के पास जा रहा हूँ, यही है आप जैसे 'महापुरुषों के संग का प्रभाव'।

आज श्रीबाबामहाराज की कृपा से अनेकों भक्त ब्रजनिष्ठा से धामवास करते हुए निरन्तर हरिनामामृत का रसपान कर रहे हैं, उनके सत्संगसुधा का पान हमारी पत्रिका 'मानमन्दिर, बरसाना' के पाठकजन भी करें।

प्रबन्धक

राधाकान्त शास्त्री

श्रीमानमंदिर सेवा संस्थान ट्रस्ट

श्रीब्रज-वसुन्धरा का स्वरूप

बाबाश्री के सत्संग (६/८/२००६ Visit lec.) से संकलित

श्रीमद्भागवत के अनुसार भगवान् श्रीकृष्ण ने नन्दबाबा से कहा था कि बाबा ! आप इन्द्र की पूजा करना चाहते हैं किन्तु आप थोड़ा विचार कीजिये –

न नः पुरोजनपदा न ग्रामा न गृहा वयम् ।
नित्यं वनौकसस्तात वनशैलनिवासिनः ॥

(श्रीभागवतजी १०/२४/२४)

हम लोगों के कोई गाँव नहीं है, कोई पुर (नगर) नहीं है । ब्रज के जो वन और पर्वत हैं, वे ही हमारा निवास-स्थल (घर) हैं । ब्रज का यह स्वरूप स्वयं श्रीकृष्ण ने बताया । इसी प्रकार वृन्दावन का स्वरूप भी दाऊजी के सामने वर्णन करते हुए श्रीकृष्ण ने कहा – 'दाऊ भैया ! हम लोग ब्रज में जहाँ भी चलते हैं, जिस गली से निकलते हैं, जिस पर्वत पर जाते हैं, वहाँ एक अत्यन्त प्रेम भरा विचित्र खेल होता है ।

स तत्र तत्रारुणपल्लवश्रिया
फलप्रसूनोरुभरेण पादयोः ।
स्पृशच्छिखान् वीक्ष्य वनस्पतीन् मुदा
स्मयन्निवाहाग्रजमादिपूरुषः ॥

(श्रीभागवतजी १०/१५/४)

हम लोग ब्रज में जहाँ भी जाते हैं, वहाँ की लताएँ, वहाँ के वृक्ष लाल पल्लवों की डाली में बड़े मधुर फल और फूल भरकर हमारे चरणों में रख देते हैं । इस प्रकार ये हमारा प्रेम भरा सत्कार करते हैं । यह केवल एक वृक्ष की ही बात नहीं है, सभी वनस्पतियाँ अथवा वृक्ष हमारे चरण स्पर्श करते हैं ।

अहो अमी देववरामरार्चितं
पादाम्बुजं ते सुमनःफलार्हणम् ।
नमन्त्युपादाय शिखाभिरात्मन-
स्तमोऽपहत्यै तरुजन्म यत्कृतम् ॥

(श्रीभागवतजी १०/१५/५)

हे देवताओं में श्रेष्ठ दाऊजी ! सभी देवगण आपके चरणकमलों की वन्दना करते हैं ।

'श्रीवृन्दावनमहिमामृत' में यही भाव श्यामसुन्दर श्रीजी के प्रति व्यक्त करते हैं । यह भागवतकार की शैली है कि वे श्रीजी को गोपनीय तत्त्व मानकर उन्हें साक्षात् रूप से सामने नहीं लाते हैं किन्तु श्रीवृन्दावनशतक, श्रीराधासुधानिधि तथा अन्य ग्रन्थों में रसिकों के अनुसार श्यामसुन्दर ने यही वचन श्रीजी के लिए कहे हैं – **'राधे देख वन की बात ।'**

'हे राधे ! इस वन को देखिये, यहाँ की हर लता आपका स्वागत कर रही है ।' श्रीमद्भागवत के अनुसार श्रीकृष्ण बलरामजी के प्रति कह रहे हैं – हे दाऊजी ! आपके चरणकमल देववृन्द द्वारा वन्दित हैं । जहाँ से भी आप निकलते हैं, वहाँ के वृक्ष और लतायें अपनी शिखाओं द्वारा आपके चरणों में नमन करते हुए प्रेम भरा सत्कार कर रहे हैं, ये इसीलिए वृन्दावन में वृक्ष-लता बने हुए हैं, इससे 'तम' का नाश हो गया । तम के नाश का यह मतलब नहीं है कि वृन्दावन के लता-वृक्ष अपने 'तम' का नाश कर रहे हैं । ये तो लाड़ली-लाल की उपासना करते हैं, अतः इनमें 'तम' कहाँ से हो सकता है ? परन्तु जो अचर जाति के वृक्ष हैं, उनका ये प्रतिनिधित्व कर रहे हैं । अतः उन सबके 'तम' का नाश हो रहा है, यह आर्षवाणी है । इसके आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि सारा बृज-वृन्दावन, यहाँ के पर्वत जैसे गिरिराजजी तथा इनके एक-एक शिखर लताओं-वृक्षों से भरे हुए, श्रीकृष्ण की उपासना करते हुए रस बरसा रहे हैं । यहाँ तक कि श्रीकृष्ण ने बलरामजी से आगे कहा –

एतेऽलिनस्तव यशोऽखिललोकतीर्थं
गायन्त आदिपुरुषानुपदं भजन्ते ।

(श्रीभागवतजी १०/१५/६)

हे दाऊ ! और तो क्या, यहाँ के भँवरे, यहाँ के पक्षी आदि भी आपका यश गाते हैं । रसिक महापुरुषों ने कहा है –

वृन्दावन के वृक्ष को, मरम न जाने कोय ।
डाल-डाल फल पाँत सों, राधे-राधे होय ॥

श्रीकृष्ण कहते हैं – एक-एक भँवरा, एक-एक पक्षी तक यश गाता है; भँवरे की भनभनाहट सामान्य नहीं होती है । कैसा रसमय धाम है कि जिस भी वृक्ष के पास चले जाओ, जिस पक्षी के पास चले जाओ, जिस भँवरे के पास चले जाओ, वहाँ युगल-सरकार का यशगान होता रहता है; ऐसे धाम का भागवत में वर्णन मिलता है –

प्रायो अमी मुनिगणा भवदीयमुख्या
गूढं वनेऽपि न जहत्यनघात्मदैवम् ॥ (श्रीभागवतजी १०/१५/६)

श्रीकृष्ण बलरामजी से कहते हैं – ये दिव्य मुनि हैं, जो यहाँ भँवरे बने हुए हैं। मैं और आप यहाँ अपने स्वरूप को छिपाए हुए हैं, ग्वाल रूप में हैं फिर भी ये भँवरे हमें पहचान गये हैं और छोड़ नहीं रहे हैं। हर समय यशगान कर रहे हैं –

नृत्यन्त्यमी शिखिन ईड्य मुदा हरिण्यः
कुर्वन्ति गोप्य इव ते प्रियमीक्षणेन।

(श्रीभागवतजी १०/१५/७)

हम लोग इस वन में जिधर भी जाते हैं, हमारे स्वागत के लिए यहाँ के मयूरगण नृत्य करते हैं। कितना रसमय धाम है। यह प्रभु श्यामसुन्दर स्वयं श्रीमद्भागवत में कह रहे हैं। इस धाम के स्वरूप का वर्णन कर रहे हैं कि उस समय क्या था और आज युग के प्रभाव से धाम का स्वरूप क्या है ? यह इसलिए जानना जरूरी है ताकि हम लोग जब भावना करने बैठें तो जो लोग लीला-चिन्तन करते हैं, उनको इसी प्रकार से धाम का चिन्तन करना चाहिए। उपास्य की दृष्टि से यह धाम का स्वरूप बताया गया है। श्यामसुन्दर बलरामजी से कहते हैं – हम लोग इस वन में जिधर भी जाते हैं, हमारे स्वागत के लिए मयूर-मयूरी नाच रहे हैं कि श्रीकृष्ण-बलराम आ रहे हैं। जिस प्रकार नर्तकियाँ नृत्य करती हैं, उसी प्रकार यहाँ की हिरनियाँ अपनी कला दिखा रही हैं, यह बड़े आश्चर्य की बात है। जब हिरनियाँ ऐसी कला का प्रदर्शन कर रही हैं, फिर ब्रजगोपियों की अद्भुत कला का तो क्या कहना ? श्यामसुन्दर हिरनियों की कला का वर्णन कर रहे हैं कि जिस प्रकार गोपिकायें देखती हैं, उसी प्रकार इस वन की प्रत्येक हिरनी हमारे सामने आकर अपने नेत्रों में प्रेमाश्रु भरकर हमारा स्वागत कर रही है, प्रेम के भाव दिखा रही है। श्रीकृष्ण कहते हैं कि गिरिराजजी का, वृन्दावन का दिव्य संगीत सुनो। संगीत क्या है ? सम्यक् प्रकार से गाने को 'संगीत' कहते हैं परन्तु वह सम्यक् प्रकार क्या है ? संगीत शास्त्रकारों ने कहा कि संगीत की परिभाषा यह है – **"गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते।"** जहाँ तीनों चीजें एक साथ हों, उसे संगीत कहते हैं। गीत (गान) तो होना ही चाहिए, वाद्य भी होना चाहिए, नृत्य भी होना चाहिए। संगीतशास्त्र के अनुसार, इनमें एक अंग भी यदि अपूर्ण है तो वह संगीत नहीं है। श्यामसुन्दर बलरामजी से कहते हैं कि सम्पूर्ण ब्रज में दिन-रात दिव्य संगीत की धारा प्रवाहित होती रहती है। यह इस धाम का स्वरूप है और जो उपासक है, उसके लिए इस स्वरूप को समझना बहुत आवश्यक है। इसलिए आवश्यक है क्योंकि आज जो ब्रज का परिवेश बदल रहा है, उस बदलते हुए परिवेश में धाम का जो प्राचीन स्वरूप है, उसका हृदय में भाव नहीं आ पाता है। आचार्यों ने बताया है कि नृत्य दो प्रकार का होता है - एक तो ताण्डव नृत्य होता है और एक लास्य नृत्य होता है, जो संगीतशास्त्री हैं, वे इसे जानते हैं; श्रीमद्भागवत में इन सबका वर्णन किया गया है। दुःख की बात यह है कि श्रीमद्भागवत में वर्णित महारास का संगीत क्या है, मेरे विचार से इस विषय में गम्भीरतापूर्वक शोध अभी तक नहीं किया गया है। इसका कारण यह है कि अधिकतर विद्वान् संगीत नहीं जानते हैं और जो संगीत जानते हैं, वे विद्वान् नहीं होते हैं। मैंने यह अनुभव किया कि संगीत की दो धारायें विश्व में चल रही हैं। एक तो मेलोडी और एक हार्मोनी। भारतवर्ष का संगीत मेलोडी प्रधान है तथा पाश्चात्य संगीत हार्मोनी प्रधान है। भागवत में वर्णित महारास के संगीत में मैंने इन दोनों ही प्रकार के संगीत का अनुभव किया है और इन दोनों से अतिरिक्त भी कुछ वर्णन है। इस विषय में केवल मेरी ही कल्पना नहीं है बल्कि आचार्यों ने भी अपनी टीका में इसके बारे में लिखा है कि केवल नृत्य ही रास नहीं है। रास के नृत्य के बारे में कुछ आचार्यों ने बताया कि यह हल्लीशक नृत्य है। ऐसा नृत्य देवलोक में नहीं है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में ऐसा नृत्य किसी भी लोक में नहीं है। रास में ऐसा संगीत है, जिसको आज तक न शिवजी समझ पाए, न ब्रह्माजी समझ पाए, न सरस्वती और न ही गणेशजी समझ पाए, कोई भी उस संगीत को आज तक नहीं समझ सका। स्वयं भागवत में ही इसका वर्णन है कि वह संगीत कुछ अलग ही है। युगलगीत में ब्रजगोपिकाएँ कहती हैं – (श्रीभागवतजी १०/३५/१४,१५) टीकाकार लिखते हैं कि जब श्रीकृष्ण ने वेणुवादन किया तो उसे सुनने के लिए 'शक्र' इन्द्र का टोल आया था, यह समझने के लिए कि यह श्रीकृष्ण का संगीत क्या है ? 'शर्व' महादेव का टोल आया, 'परमेष्ठि' ब्रह्मा का टोल आया।

धन-सम्पति, मान-प्रतिष्ठा चाहने वाले के मन में कृष्ण कभी नहीं आएँगे, चाहे वह कितना भी भजन-साधन क्यों न कर ले? कृष्ण तो वासना शून्य हृदय में ही आते हैं। जब समस्त एषणायें चली जायेंगी, तब तुम बुलाओगे तो भगवान् दौड़े-दौड़े चले आएँगे, फिर तुम धक्का देकर भी बाहर निकालोगे तो भी तुम्हारे हृदय से नहीं जाएँगे और तुम्हारे वश में हो जाएँगे।

'प्रेम' से ही प्रियतम-प्राप्ति

बाबाश्री के श्रीराधासुधानिधि-सत्संग (१२/५/१९९८) से संकलित

'प्रेम' ही श्रीकृष्ण हैं, जहाँ प्रेम नहीं है, वहाँ श्रीकृष्ण नहीं हैं। चाहे गृहस्थी हो, चाहे साधु हो; जहाँ पर थोड़ा-सा भी कलह होता है, वहाँ श्रीकृष्ण नहीं हैं; अपने आपको इस थर्मामीटर से तौलना चाहिए कि हम भगवान् के कितने पास हैं। वह थर्मामीटर नहीं है कि हमने आँख बंद कर ली और भीतर ध्यान में हमको रोशनी दिखाई पड़ी, यह गलत योग है, इसको योग नहीं कहते हैं। लोग जानते ही नहीं हैं कि योग क्या है ? रागादि शत्रु चोर हैं जो हमारे मन में बैठे हुए हैं, ये चोर इसलिए हैं क्योंकि ये हमारी ज्ञान-शक्ति को चुरा लेते हैं। मान लो किसी ब्रजवासी ने किसी साधु से कहा – 'ए मोढ़ा !' अब यह शब्द सुनकर मोढ़ाजी का चेहरा उतर गया। विचार किया जाए तो पता पड़ेगा कि 'मोढ़ा' शब्द तुमसे चिपक नहीं गया, शब्द आया और आकाश में उड़ गया। ज्ञान-दृष्टि से देखो तो जरा-सी बात के लिए क्रोध करने और लड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है। एक भाषा में कोई शब्द अच्छा होता है और दूसरी भाषा में वही शब्द गाली है, इसके अनेकों उदाहरण हैं। जैसे किसी ने कहा – 'अजी, आप तो फूल की तरह हैं।' यह बात सुनकर वह व्यक्ति बहुत प्रसन्न हुआ और यदि अंग्रेजी में किसी से कह दो – you are fool . आप तो fool (फूल) हैं। अंग्रेजी में 'फूल' का अर्थ होता है – मूर्ख (बेवकूफ) अर्थात् तुम बड़े मूर्ख हो। इस तरह एक भाषा में तो 'फूल' का अर्थ बढ़िया है और दूसरी भाषा में 'फूल' कहना गाली की तरह हो गया। ऐसे ही संसार में एक भाषा में कोई चीज गाली है तो दूसरी भाषा में वही चीज प्रशंसा है। कथनाशय यही है कि मनुष्य केवल अज्ञान से ही दुःखी हुआ करता है, नहीं तो क्रोध करने का कोई कारण नहीं है। दुनिया में कोई शब्द गन्दा नहीं है। गन्दा है हमारा मन, जिसके भीतर चोर बैठे हुए हैं; इसीलिए ऐसे लोग योगी नहीं हैं। साँस खींचने वाले योगी नहीं हैं। प्राणायाम करने वाले योगी नहीं हैं। योगी वही होता है जिसका चित्त समान है। गीता में भगवान् ने कहा – "**समत्वं योग उच्यते**।"

भगवान् ने बताया कि योगी वही है जिसका चित्त समान है – मान-अपमान में समान है, हानि-लाभ में समान है, जीवन-मृत्यु में भी समान है। जिसका चित्त समान है, उसको योगी कहते हैं किन्तु ऐसा बनना कौन चाहता है ? दुनिया में ऐसा कौन है जो भगवान् से मिलना चाहता है, ऐसा बनना चाहता है। हम लोगों की हालत तो कुत्तों की तरह है। एक कुत्ता भौंकता है तो उसे देखकर दूसरा कुत्ता भी भौंकने लगता है। ऐसी स्थिति में भगवान् कहाँ से मिलेंगे ? श्रीभगवान् कहते हैं कि जहाँ मन में समत्व है, उसको योग कहते हैं; ऐसा भगवान् ने करके दिखाया। जब भगवान् संसार से अपनी लीला समाप्त करके अपने परमधाम को जाने लगे तो सारा यदुवंश नष्ट हो गया। अरबों-खरबों की संख्या में यदुवंशी थे, वे सब आपस में ही लड़कर मर गये किन्तु ऐसा होने पर भी भगवान् पहले की तरह मुस्कुराते रहे; इसको 'समता' कहते हैं, ये है 'सच्चा योग'। कोई भी घटना तुम्हारे सामने घट रही है, उसमें तुम्हारा मन समान रहे। मन में उथल-पुथल नहीं होनी चाहिए, उस मन में भगवान् रहते हैं। ये चीजें दिखाती हैं कि भगवान् हमसे कितनी दूर हैं। ज्ञानयोग भी योग है, तपस्या करना भी योग है। श्रीभगवान् ने श्रीगीताजी ६/४६,४७ में अर्जुन से कहा है –

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥
योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः॥

योगी बहुत से होते हैं, जैसे - ज्ञानयोगी, कर्मयोगी आदि किन्तु सबसे बड़ा योगी तो मेरा भक्त ही है, सम्पूर्ण योगियों में जो श्रद्धावान योगी मुझमें लगे हुए अन्तरात्मा से मुझको निरन्तर भजता है, वह योगी मुझे परम श्रेष्ठ मान्य है। इसलिए ज्ञानयोग छोड़ दो, अन्य सब चीजें छोड़ दो। सबसे बड़ा है भक्तियोग। भक्ति क्या है ? श्रीरूपगोस्वामीजी कहते हैं –

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम् ।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ।।

पहली बात तो यह है कि अन्य अभिलाषा, अन्य इच्छाएँ न आयें। भक्तियोग यह है कि ज्ञान और कर्म का पर्दा उस पर न पड़े। अनुकूल भाव से कृष्ण की सेवा करने को 'भक्ति' कहते हैं, यह है भक्तियोग। अब यहाँ पर यह बात समझने की है कि 'ज्ञान और कर्म' भक्ति के आवरण हैं, वे भले ही योग हैं किन्तु जिस भक्ति से भगवान् वश में आते हैं, उसमें तो 'ज्ञान और कर्म' आवरण हैं; ऐसा क्यों ? ये इसलिए आवरण हैं क्योंकि 'ज्ञान' में तीन बातें होती हैं –१. 'भगवान्' तत् पदार्थ २. 'त्वं' जीव पदार्थ, जो भजन करने वाला है। ३. ब्रह्म और जीव की एकता।

यदि जीव व ब्रह्म की एकता हो गयी तो फिर 'जीव' दास कैसे बनेगा ? इसलिए 'ज्ञान' व्यर्थ का आवरण है, अतः इस तरह ज्ञान कट गया। 'कर्म' स्वयं अपने आप भगवान् से नहीं मिला सकता, एकमात्र भगवान् की भक्ति ही मिला सकती है। ज्ञानकर्माद्य – ज्ञानकर्मादि – ज्ञान, कर्म आदि; 'आदि' में ज्ञान, कर्म के अलावा 'वैराग्य' है, आदि में सांख्य है, आदि में दैवी-सम्पत्तियाँ हैं; ये सब भगवान् से नहीं मिला सकते हैं। उपरोक्त श्लोक में प्रयुक्त 'आदि' शब्द का उदाहरण – वैराग्य क्या है ? विषयों में आसक्ति न हो, इसको 'वैराग्य' कहते हैं किन्तु वैराग्य दो प्रकार का होता है - एक युक्त और एक अयुक्त। एक फल्गु वैराग्य होता है, इसका उदाहरण देखो - किसी ने कहा कि ये महाराज दूधाहारी हैं, ये दूध के अतिरिक्त कुछ नहीं खाते-पीते हैं। अब भगवान् का प्रसाद सामने आया और दूधाहारीजी ने हटा दिया तो उनका ऐसा वैराग्य चूल्हे में गया, उससे भक्ति नष्ट हो गयी क्योंकि प्रसाद का अपराध हो गया, वह फल्गु वैराग्य है। किसी ने कहा कि ये महाराज मौनी हैं, 'भगवन्नाम' भी नहीं बोलते हैं; अब 'भगवन्नाम' न लेने से इनकी भक्ति नष्ट हो गयी, ऐसा वैराग्य किस काम का ? भगवान् 'वैराग्य' से नहीं मिलते हैं। भगवान् की प्राप्ति एकमात्र 'भक्ति' से होती है, इसीलिए भक्तिरसामृतसिन्धु में कहा गया है –

प्रापञ्चिकतया बुद्ध्या हरिसम्बन्धिवस्तुनः ।
क्षुभिः परित्यागो वैराग्यं फल्गु कथ्यते ।।

भगवान् सम्बन्धी वस्तु को भी प्रपंच समझ लेना – ऐसा हम जैसे साधु लोग किया करते हैं। भगवत्सम्बन्धी वस्तु को प्रपंच समझना 'नीचता' है; ऐसा वैराग्य भक्ति को नष्ट कर देगा। हम लोगों ने मानगढ़ से ब्रजभूमि की सेवा के लक्ष्य से पर्वतों की रक्षा का आन्दोलन, ब्रज के सरोवरों की रक्षा का अभियान चलाया तो ब्रज के ही अनेकों ख्याति प्राप्त साधुओं ने इसका यह कहकर विरोध किया कि यह सब कार्य प्रपंच है, साधु को तो भजन करना चाहिए, ये मानगढ़ वाले तो भजन छोड़कर व्यर्थ के प्रपंच में फँस गये हैं और ऐसा कहकर उन साधुओं ने धाम-सेवा के कार्य में कोई सहयोग करना तो दूर, यदि कोई इस सेवा से जुड़ता तो उसे भी दिग्भ्रमित करके रोकने का प्रयास किया, जबकि यह बहुत बड़ा अपराध है। रूपगोस्वामीजी कहते हैं – **निर्बन्धः कृष्णसंबन्धे युक्तं वैराग्यमुच्यते**।

कृष्ण और कृष्ण के सम्बन्ध में अभिनिवेश होना 'युक्त वैराग्य' है और भगवत्सम्बन्धी वस्तुओं और कार्यों को प्रपंच समझकर उसे छोड़ देना 'नीच वैराग्य' है, उससे मनुष्य का विनाश हो जायेगा; ऐसा 'नीच वैराग्य' प्रायः साधु लोग ही किया करते हैं, यह 'फल्गु वैराग्य' है और चैतन्यमहाप्रभुजी ने इसे त्याज्य बताया है परन्तु बड़े आश्चर्य की बात है कि यह गड़बड़ी अधिकांशतया साधु-समाज में ही देखने को मिलती है, इस 'फल्गु वैराग्य' से भगवत्सम्बन्धी वस्तु का तिरस्कार हो जाता है; ऐसा वैराग्य किस काम का ? इससे अपराध हो जाता है। इसीलिए रूप गोस्वामीजी ने कहा है –

अंगत्वे सुनिरसतेऽपि नित्याद्यखिलकर्मणाम् ।
ज्ञानस्याध्यात्मिकस्यापि वैराग्यस्य च फल्गुनः ।
स्पष्टताऽर्थं पुनरपि तदेवेदं निराकृतम् ।।

'भक्ति' भी आवरण है। वैराग्य तो आवरण है ही और ऐसी भक्ति जिसके अन्तर्गत हमने बहुत से शिष्य बनाये, आश्रम बनाये तो – **"धनशिष्यादिभिद्वरैर्या भक्तिरुपपाद्यते।"** जैसे गृहस्थी लोग अपना बहुत बड़ा समुदाय, बहुत बड़ा

कुल बनाते हैं, इसी प्रकार से भक्तिमार्ग में यदि साधु लोग करते हैं तो यह 'भक्ति' ही आवरण है, 'आदि' शब्द में यह सब कुछ आता है, ये सब चीजें 'भक्ति' के आवरण हैं। ऐसा वैराग्य जो भगवत्सम्बन्धी वस्तुओं से ही हटा दे, वह तो नीचता है, उसे त्याग देना चाहिए। ऐसा वैराग्य अधिकतर हम साधु लोग किया करते हैं। इसीलिए रूप गोस्वामीजी ने भक्ति की परिभाषा में कहा – 'ज्ञानकर्माद्यनावृतम्' अर्थात् ज्ञान, कर्म, वैराग्य आदि से जो अनावृत है, उसको 'भक्ति' कहते हैं, वह भक्तियोग है। इसीलिए गोविन्दस्वामीजी ने कहा था कि तुम कृष्ण की प्राप्ति इन साधनों से नहीं कर सकते हो –

"प्रीतम प्रीति ही सों पैये।"

कन्हैया की प्राप्ति तो प्रेम से, प्रेमयोग से ही होगी। यदि कोई सोचता है कि गोपियाँ बड़ी सुन्दर थीं, बहुत कीमती आभूषणों से सुसज्जित रहती थीं, इसीलिए श्रीकृष्ण उन पर मोहित हो गये तो यह सब गलत बात है। श्रीकृष्ण रूप, गुण, शील आदि से मोहित नहीं होते हैं।

यदपि रूप गुन शील सुघरता,
इन बातन न रिझैये॥

किसी का बड़ा सुन्दर रूप है, बड़े सुन्दर गुण हैं; जैसे कोई बहुत बढ़िया गाने-नाचने वाली है अथवा दयावान (दया वाली) है, लक्ष्मी रूपा है परन्तु ब्रज में लक्ष्मी को भी रास की प्राप्ति नहीं हुई जबकि लक्ष्मीजी में अनेकों गुण हैं। श्रीराधासुधानिधि में कहा गया है –

"लक्ष्मीकोटिविलक्ष्यलक्षणलसल्लीलाकिशोरीशतैर्"

(श्रीराधासुधानिधि – ६७)

करोड़ों-करोड़ों लक्ष्मियों से भी सुन्दर रूप-गुण का यहाँ कुछ महत्त्व नहीं है, इन बातों से कन्हैया नहीं रीझेगा। किसी का अच्छे कुल में जन्म हुआ, कोई सोचे कि हम ब्राह्मण हैं, हम आचार्य हैं, बड़े अच्छे-अच्छे कर्म कर रहे हैं; तो इनसे भी भगवान् प्रसन्न नहीं होते। कोई कहे कि हम बड़े ज्ञानी हैं, बड़े विरक्त हैं तो इससे कुछ नहीं होगा। भगवान् तो केवल 'प्रेम' से वश में होते हैं।

सत कुल जनम करम शुभ लक्षण,
वेद पुराण पढ़ैये।

चाहे चारों वेद, अट्ठारह पुराण पढ़ लो, उससे कुछ नहीं होगा यदि हृदय में स्नेह-प्रेम नहीं है तो जीभ नचाने से क्या होगा, बहुत से मन्त्र बोलने और बहुत जप-तप करने से कुछ नहीं होगा। रसना को नचाते रहो, कुछ नहीं होगा।

गोविन्द प्रभु सनेह बिन आली,
रसना कहा नचैये॥

खूब जीभ नचाते रहो लेकिन उससे कुछ नहीं होना है। इसलिए अपने हृदय में 'प्रेम' उत्पन्न करो और उस प्रेम को चारों ओर फैला दो। तुम्हारे हृदय का 'प्रेम' एक समुद्र बन जाए तथा उस 'प्रेम-सिन्धु' में सारा समाज डूब जाए, ये है सच्चा योग।

कोई इसे प्रशंसा समझे तो समझता रहे, हमारे मानगढ़ पर सैकड़ों साधक रहते हैं किन्तु आज तक किसी से ये नहीं कहा गया कि अमुक आदमी तुम्हारी अथवा मानमन्दिर की निन्दा कर रहा है तो बदले में तुम भी उसको ऐसा ही जवाब देना। यहाँ के सभी सन्तों से मैं यही कहता हूँ कि कोई आपके सामने मानमन्दिर की निन्दा करे तो उसके सामने हाथ जोड़ दो और कह दो कि हम लोग बहुत नीच हैं; ऐसा मैं प्रतिदिन ही कहता हूँ। संसार में रहते हुए अपने हृदय में प्रेम पैदा करो। बदला लेना नहीं सीखो; क्षमा करो, शत्रु को भी गले लगाओ; सच्ची भक्ति यही है।

एक प्रमादी साधु सैकड़ों को चिलम लगाना, गप्प मारना, परनिंदा करना, राग-द्वेष आदि में फँसा देता है। प्रमाद जीवन नष्ट कर देता है। इसलिए प्रमाद हटाना आवश्यक है, जिसमें प्रमाद नहीं है वह गृहस्थी भी साधु से अच्छा है। नुक्सान तब है जब साधु होकर भी कुछ नहीं करता है। खाली समय बैठा है, सो रहा है, वह न कुछ भजन कर सकता है और स्वयं तो नष्ट होगा ही आस-पास वाले को भी नष्ट कर देगा। इसलिए मनुष्य को साधनशील का संग करना चाहिए। बेकार बैठने वाले के साथ कभी नहीं बैठो।

साक्षात् श्रीभगवद्-रस 'श्रीसंत-सन्निधि'

श्रीमुरलिकाजी द्वारा रसमण्डप में श्रीराधा की परम करुणा का कथन

मान मंदिर के आराधना भवन श्रीराधा रसमण्डप में १ मई, २०२२ को हाथरस से सात बसों के द्वारा सैकड़ों श्रद्धालु भक्त मान मंदिर, बरसाना में पधारे। यहाँ की प्रसिद्ध व्यासाचार्या साध्वी श्रीमुरलिकाजी के द्वारा चौदह वर्ष पूर्व हाथरस में श्रीमद्भागवत सप्ताह यज्ञ के माध्यम से कथारसामृत का वहाँ के भक्तों को पान कराया गया था, उससे वहाँ के जनसमुदाय के हृदय में भक्तिरसामृत का ऐसा सिन्धु उमड़ा कि हाथरस नगर में सैकड़ों लोग धूमधाम के साथ प्रभात फेरी करने लगे। इन हाथरसवासियों की बरसाना धाम और श्रीबाबामहाराज के प्रति भी अगाध श्रद्धा है, इसीलिए ये वैष्णव प्रत्येक मास श्रीबाबामहाराज के सत्संग का लाभ उठाने के लिए कई बसों के द्वारा अत्यन्त उत्साह के साथ अधिकाधिक संख्या में बरसाना आते हैं। वर्ष में एक बार मई के महीने में उनके द्वारा मान मंदिर, बरसाना में एक भव्य भक्तिमय उत्सव का आयोजन किया जाता है। इसी उपलक्ष्य में ये श्रद्धालु जन मान मन्दिर पधारे तो संध्याकालीन संकीर्तन आराधना के उपरान्त साध्वी मुरलिकाजी ने उनको परम करुणामयी श्रीराधारानी के कथामृत का रसपान कराया –

(श्रीमुरलिकाजी के शब्दों में) – इस बरसाना धाम के गह्वर वन में जो रस आप लोगों को मिल रहा है, जिन महापुरुष का सानिध्य आपको प्राप्त हो रहा है, जो भूमि आपको मिल रही है, यहाँ जिस संकीर्तन के दर्शन का सौभाग्य आपको प्राप्त हो रहा है, यह अपने आपमें एक ऐसी साध्य वस्तु है, इसको पाने अथवा इसकी प्राप्ति का संसार में कोई साधन नहीं है। इसीलिए श्रीराधावल्लभ सम्प्रदाय के महापुरुष श्रीहितध्रुवदासजी महाराज ने कहा है –

या रस को साधन नहिं कोई।
कुँवरि कृपा ते कहा नहिं होई॥

श्रीजी की कृपा से असम्भव कुछ भी नहीं है।

आप लोग जो 'बरसाने' में बैठे हुए हैं, इसके मूल में आप लोगों का कोई साधन और पुरुषार्थ नहीं है, इसके मूल में केवल और केवल 'श्रीराधारानी की कृपा' ही है। परन्तु यह श्रीजी की कृपा मिले कैसे और मिल गयी तो बढ़े कैसे, तो श्रीहितध्रुवदासजी कहते हैं –

"कहो यह कृपा उपजै केहि भाँती"

यह राधारानी की कृपा कैसे हो कि यह रस निरन्तर प्राप्त होता रहे और बढ़ता रहे, इसके लिए श्रीहितध्रुवदास जी महाराज ने उत्तर दिया –

"रसिकन संग फिरै दिन राती"

रसिकों के साथ दिन-रात पड़े रहो।

जिन महापुरुष के सानिध्य में आप बैठे हैं तो केवल यह संत-सन्निधि ही राधारानी के हृदय में आपके प्रति करुणा जगा देगी, कृपा जगा देगी और श्रीजी की कृपा का एक ही स्वरूप है। श्रीराधावल्लभ सम्प्रदाय के प्रसिद्ध महापुरुष श्रीभोरीसखीजी कहते हैं –

अहो लाड़ली इतनी मोपे,
कृपा करो बलि जाऊँ।

कृपा का स्वरूप क्या है ?

जागत सोवत रटूँ निरन्तर,
श्री राधा राधा नाऊँ॥

केवल श्रीराधारानी की सतत् स्मृति बनी रहे, दिन-रात उनका चिन्तन बना रहे, यही श्रीजी की कृपा का सच्चा फल है, यही सच्ची कृपा है।

भोरी सखी जी आगे कहती हैं –

नाम रूपमय रूप नाममय,
विनिमय ह्वै दुलराऊँ।

हे श्रीराधे ! मुझे यह अखण्ड विश्वास है कि आपके (राधा) नाम में ही आपका (राधारानी का) स्वरूप छिपा है और आपका स्वरूप ही आपका नाम है अर्थात् नाम-रूप में किञ्चित् मात्र भी भेद नहीं है। रसिकजनों के सानिध्य से हमारे मुख से श्रीराधारानी का अहर्निश नाम-सेवन होने लग जाए, यही आपकी सबसे बड़ी कृपा है।

हिय जिय रसना स्वास स्वास प्रति,

रोम रोम रट लाऊँ।

हृदय से, प्राण से, रसना से और प्रत्येक श्वांस में तथा मेरे रोम -रोम से केवल श्रीजी का यश ही प्रकट हो और कुछ नहीं।

जब लौ नाम स्वास तब ही लौं,
और अधिक कहा गाऊँ ।।

अर्थात् मैं तभी तक जिऊँ, जब तक मेरा सम्बन्ध राधारानी के नाम से रहे, यदि राधारानी के यश से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है तो मुझे जीने का भी कोई अधिकार नहीं है।

ऐसी कृपा करो हे स्वामिनी,
मन में आनन्द मनाऊँ।

हे श्रीजी ! आप ऐसी कृपा करें कि मुझे न दिन का होश हो, न रात का होश हो।

श्रीहित भोरी सखी पै ढुरहु,
हुलस हुलस यश गाऊँ ।।

केवल उमंग के साथ आपके यश से मेरी प्रीति हो जाए, सच्चा लगाव हो जाए, यही आपकी (राधारानी की) सच्ची कृपा है।

गौड़ेश्वर सम्प्रदाय के आचार्यो ने कहा है कि 'नाम, रूप, लीला, धाम' इन चार चीजों में और इष्ट में किञ्चित् मात्र भी भेद नहीं है।

आप जिन महापुरुष की सन्निधि में बैठे हैं, जिस भूमि में बैठे हैं, जिस रस का अनुभव करते हुए यहाँ बैठे हैं, इस रस में और साक्षात् भगवत्प्राप्ति के रस में कोई अंतर नहीं है। ये साक्षात् भगवत्प्राप्ति का सुख है, जिसका अनुभव आपलोग कर रहे हैं जैसा कि गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपने पद में कहा है कि श्रुतियों में, शास्त्रों में कल्याण के लिए कितना कुछ कहा गया है लेकिन

"केहि केहि दीन निहोरे"

हम दीन-हीन सामर्थ्यहीन जन कुछ कर नहीं सकते।

तुलसिदास यह जीव मोह रजु,
जेहि बाँधे सोई छोरे।

जीव अपने साधन पर भरोसा नहीं कर सकता, अपने कल्याण के लिए साधन का दावा नहीं कर सकता, केवल उनकी कृपा का भरोसा किया जा सकता है और इस कृपा का आप लोग प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे हैं क्योंकि जिस भूमि में आपलोग बैठे हैं –

यह रस बरसे बरसाने जू।
बिनु कुँवरि कृपा को पावै जू ।।

इस रस को बिना श्रीजी की कृपा के पाया नहीं जा सकता है, इसलिए महापुरुषों के चरणों में, पूज्य श्रीबाबामहाराज के चरणों में यही प्रार्थना है कि यह रस दिन-रात बढ़ता रहे, हम लोगों का श्रीबरसाना-गह्वरवन के प्रति और भी अधिक लगाव हो।

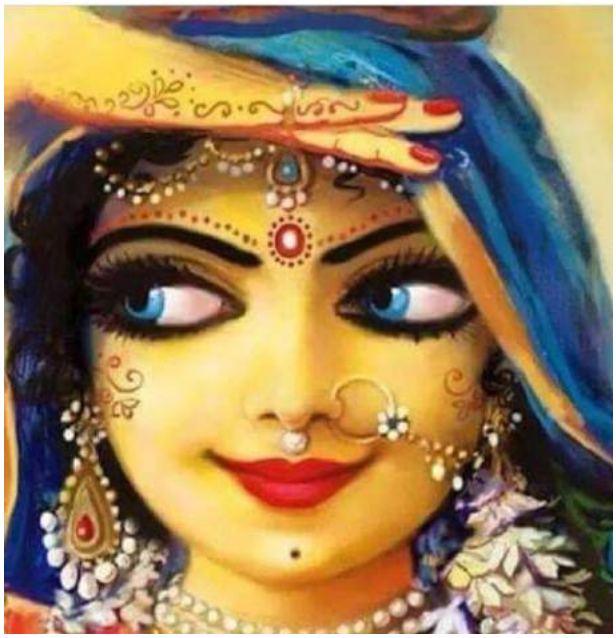

हनुमत्-पद्धति का कीर्तन

बाबाश्री के सत्संग 'गोपीगीत' (३०/११/ १९९४) से संकलित

मानमन्दिर में रात को जो कीर्तन होता है, यह 'हनुमत् पद्धति' का है। (यह घटना आज से साठ वर्ष पूर्व की है) एकबार कुछ सरस गायन करने वाले भक्तजन मानमन्दिर पर आये, वे सत्संगी भी थे और रात-रात भर बैठकर गाते थे किन्तु 'हनुमत् पद्धति' का कीर्तन देखा तो उसकी आलोचना की, उनकी मण्डली में कुछ कन्यायें भी थीं, वे बहुत मीठा गाती थीं, जब वे गाती थीं तो उनका गीत सुनने के लिए निकटवर्ती गाँवों के बहुत से लोग भी आते थे और सारी रात बैठकर उनका गीत सुनते थे। उन सरस गायन करने वालों ने हम लोगों के कीर्तन की आलोचना की। उसका कारण यह था कि उन लोगों ने जब अपना संगीत का कार्यक्रम आरम्भ किया तो हमारे कीर्तन करने वाले अधिकतर ब्रजवासी सो गये; जब वे सो गये तो इन लोगों को और अधिक खीझ लगी। उस ज़माने में कृषि के लिए ट्रैक्टर नहीं हुआ करते थे। मानमन्दिर के कीर्तन में रात को जितने भी ब्रजवासी आते थे, वे लोग हल के द्वारा रात भर खेत जोतते थे, जब कोई आदमी इतना कठोर परिश्रम करता है तो उसका रोम-रोम थका रहता है। अब ये आगन्तुक सरस गायक लोग मीठे स्वर से धीरे-धीरे इस प्रकार गान करते थे कि नींद न भी आ रही हो तो आ जाये, हुआ भी यही, ये ब्रजवासी किसान सरस 'गायकों' के कीर्तन में सो गये और जब रात को ११ बजे हमारा 'हनुमत् पद्धति' का कीर्तन शुरू हुआ तो इन सबकी नींद गायब हो गयी और ये सब उछलने-कूदने लगे। उस समय मैंने उन सरस गान वालों से कहा कि अधिकार भेद होता है, अधिकारी भेद से सब बातें होती हैं; मैंने उनको एक कथा सुनाई कि दो नवाब थे – एक लखनऊ के थे और दूसरे कलकत्ता के थे। लखनऊ के नवाब का रसोइया घृत फूल में पूड़ी बनाता था। सवा मन घी में दवाई डालकर उसको औटाया जाता था, उसमें थोड़ा-सा घृत फूल निकलता था, उसमें लखनऊ के नवाब की पूड़ी बनती थी। एक बार कलकत्ता का नवाब लखनऊ के नवाब के महल में आया तो उसका खूब आतिथ्य-सत्कार किया गया। लखनऊ के नवाब ने अपने रसोइया से कहा कि इनके लिए ऐसा भोजन बनाना कि ये हमारी प्रशंसा करें क्योंकि यह मेरी प्रतिष्ठा की बात है।

रसोइया बोला – 'हुजूर ! मैं तो बहुत बढ़िया भोजन ही बनाऊँगा।' उसने अनेकों प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजन बनाये। जब कलकत्ते के नवाब भोजन करने लगे तो लखनऊ के नवाब ने पूछा – 'कहिये, भोजन कैसा लगा ?' कलकत्ते के नवाब बोले – 'बहुत बढ़िया लगा किन्तु कलकतिया वाला मजा नहीं आया।' यह सुनकर तो लखनऊ के नवाब का चेहरा पीला पड़ गया। वे रसोई के भीतर गये और अपने रसोइये से बोले कि मैं अब तेरा सिर तलवार से काट दूँगा। तू कहता था कि मैं तो दुनिया में एकमात्र रसायन भोजन बनाने वाला हूँ किन्तु तेरे भोजन में कलकत्ते के नवाब को कलकतिया वाला मजा नहीं आया; ये क्या होता है, ऐसा तो मैंने आज तक सुना भी नहीं। रसोइया बोला – 'हुजूर ! आप मुझे छः महीने का समय दीजिये फिर मैं आपको कलकतिया वाला मजा दिखा दूँगा। विद्या सीखने में तो समय लगता है।'

नवाब साहब बोले – 'ठीक है।' अब वह रसोइया कलकत्ता पहुँचा और वहाँ के रसोइये से मिला। वहाँ के खाने का रहस्य यह था कि कलकत्ते के नवाब मिर्च बहुत खाते थे, उनके प्रत्येक पदार्थ में इतनी अधिक मिर्च पड़ती थी कि यदि कोई दूसरा आदमी उसे खा ले तो बेहोश ही हो जाए। लखनऊ का रसोइया कलकत्ते से वहाँ के भोजन की विधि सीखकर आया तो उसने दो-तीन महीने बाद अपने नवाब से कहा कि अब आप कलकत्ते के नवाब को फिर से यहाँ बुलाइए। कलकत्ते के नवाब को फिर से लखनऊ बुलाया गया और रसोइये ने उनकी आदत के अनुसार खूब मिर्च डालकर भोजन की एक थाली उनके सामने रख दी और दूसरी थाली अपने साहब के आगे रख दी। लखनऊ के नवाब ने कलकत्ते के नवाब से कहा कि

आप पहले भोजन शुरू कीजिये; उन्होंने जैसे ही एक कौर मुख में डाला तो तुरन्त ख़ुशी से बोल उठे – 'वाह ! कलकतिया वाला मजा आ गया ।' उनकी बात सुनकर लखनऊ के नवाब ने सोचा कि अरे, लगता है कि यह तो कोई विशेष स्वादिष्ट भोजन है, आज मेरा भाग्य खुल गया कि रसोइया ऐसा बढ़िया भोजन बनाना सीख आया और फिर उन्होंने ढेर-सा कौर चम्मच में लेकर जब अपने मुख में डाला तो उनके शरीर की विचित्र दशा हो गयी, कपड़े अस्त-व्यस्त हो गये, पसीना आने लगा और वे बेहोश हो गये । नौकरों ने ले जाकर उनको पंखा किया, बहुत देर तक चिकित्सकों ने उनका उपचार किया तो नवाब साहब को होश आया । होश आते ही वे बोले – 'अभी बुलाओ उस रसोइये को, मैं उसे जान से मार डालूँगा ।'

वह रसोइया अपने नवाब से बोला – 'हुजूर ! मैं क्या करूँ, इसमें मेरा क्या दोष है ? यह तो कलकतिया वाला मजा है ।' इसी प्रकार मैंने भी बाहर से आये गायकों से कहा कि आप लोगों का मीठा-मीठा कीर्तन तो लखनऊ के नवाब जैसा है और हमारे 'हनुमत् पद्धति' के कीर्तन में कलकतिया वाला मजा है । इस कलकतिया वाले मजे को हर आदमी हजम नहीं कर सकता है । ये तो जो लोग रात भर हल से खेत जोतते हैं, बहुत थके हुए रहते हैं, जिन्हें नाचना नहीं आता तो उनके लिए है कि चलो उछलो-कूदो, यह 'हनुमत्-पद्धति' है; यह शास्त्रीय बात है ।

'हनुमत्-पद्धति' का एक उदाहरण और देते हैं जिससे कि आपको विश्वास हो जाए । साढ़े साती 'शनीचर' से सारा संसार डरता है । ब्रज में 'कोकिला वन' राधामाधव की लीलाभूमि है, वहाँ पर पता नहीं कब से साढ़े साती 'शनीचर' देवता बैठ गया और उसका ऐसा प्रभाव बढ़ गया कि 'राधामाधव' का मन्दिर दब गया, उनकी लीलास्थली दब गयी । अब तो सारी दुनिया वहाँ केवल 'शनीचर' देवता को पूजने के लिए ही जाती है और राधामाधव को वहाँ कोई नहीं पूछता; हमारे देखते-देखते ऐसा हुआ है । ६०-७० साल पहले वहाँ ऐसी भीड़ कभी नहीं होती थी । अब तो कोकिलावन की नक़ल करके 'चमेली वन' में भी शनीचर देवता की स्थापना कर दी गयी है, शेरगढ़ में भी स्थापित हो गया । ब्रज में चारों ओर अब तो शनिदेव ही छाया हुआ है । माया का ऐसा प्रभाव बढ़ गया है क्योंकि –

टेढ़ जानि सब बंदइ काहू ।
बक्र चंद्रमहि ग्रसइ न राहू ।।

(श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड - २८१)

दुनिया टेढ़ा ग्रह जानकर 'शनि' से भय करती है । 'शनि' तो ग्रह है और भला ग्रहों की भक्ति से क्या प्रयोजन है ? एकबार शनीचरजी 'हनुमानजी' के पास भी गये; उस समय हनुमानजी कीर्तन कर रहे थे, शनिदेव ने उनसे कहा कि महाराज ! मेरा आपके ऊपर आने का समय हो गया है, अब आप मुझे आज्ञा दीजिये । हनुमानजी ने देखा कि साढ़े सातीजी आये हैं तो उन्होंने अपने मन में विचार किया कि यह तो सबके पास जाता होगा, भगवान् के भक्तों के पास भी जाता होगा, इसको दिखाई नहीं दे रहा है कि इस समय मैं कीर्तन कर रहा हूँ ।

हनुमानजी ने कहा – 'ठीक है महाराज ! जब आपका समय हो गया है तो आ जाओ । आप तो सबके पास जाते हैं ।' शनिदेव ने पूछा – 'हनुमानजी ! मैं आपके शरीर में कहाँ बैठूँ ?' हनुमानजी बोले – 'अरे, आप तो देवता हैं, इसलिए मेरे सिर पर बैठिये ।' हनुमानजी की बात सुनकर शनिदेव उनके सिर पर जाकर अच्छी तरह से बैठ गये और सोचने लगे कि हनुमानजी ने तो मुझे बड़ा सम्मान दिया । इतने में ही हनुमानजी ने एक पहाड़ उठाया और अपने सिर पर रख लिया, ऊपर पहाड़ और बीच में शनीचर बाबा । शनिदेव ने पूछा – 'अरे महाराज ! ये आप क्या करते हैं ?' हनुमानजी ने कहा कि मेरा तो वानर स्वभाव है, यह आपको मालूम होना चाहिए; ऐसा कहकर हनुमानजी नाच-नाचकर कीर्तन करने लगे, उछलते-कूदते हुए वे जोर-जोर से कीर्तन करने लगे । अब तो हनुमानजी के उछलने-कूदने से पहाड़ की चोट से शनीचर देवता की हड्डी-पसली टूटने लगी, वे 'चें-चें, में-में' करने लगे और बोले – 'अरे हनुमान महाराज ! मुझे क्षमा कीजिये, मुझे किसी प्रकार से अपने सिर से नीचे उतार दीजिये, मैं फिर कभी आपके पास नहीं आऊँगा ।' हनुमानजी ने

शनिदेव की बात सुनी ही नहीं क्योंकि वे तो आवेश के साथ कीर्तन कर रहे थे। यह 'हनुमत्-पद्धति' का कीर्तन है, इसमें दूसरे की आवाज सुनाई नहीं पड़ती है। जब शनीचरदेव बहुत देर तक चिल्लाते रहे तो हनुमानजी ने कहा – 'क्या बात है ?' शनिदेव बोले – 'अरे महाराज ! अब मुझ पर कृपा करो और मुझे छोड़ दो।' हनुमानजी ने कहा – 'अरे महाराज ! अब तो आप साढ़े सात साल तक मेरे सिर पर विराजिये, अभी तो आपको बहुत थोड़ी ही देर हुई है।'

शनिदेव बोले – 'अरे महाराज ! कृपा करो। आपके सिर पर बैठकर तो थोड़ी ही देर में मेरा दम निकल गया।' हनुमानजी ने कहा – 'अच्छा तो मुझे कुछ वरदान दो, कुछ वचन दो, तब मैं तुमको अपने सिर से हटाऊँगा।'

शनिदेव बोले – 'महाराज ! जो वचन आप चाहो, वही ले लो।' हनुमानजी ने कहा – 'अब यह वचन दो कि भगवान् के भक्तों का नुकसान नहीं करोगे, मुझे तो तुमसे कोई हानि नहीं है।' शनिदेव बोले – 'मैं हर भगवद्भक्त को भक्ति की ओर ही बढ़ाऊँगा।' हनुमानजी ने कहा – 'ठीक है, अब उतर जाओ।' हनुमानजी ने पहले अपने सिर से पहाड़ उतार दिया और फिर शनिदेव को भी नीचे उतार दिया। नीचे उतरकर शनिदेव ने हनुमानजी को दण्डवत प्रणाम किया और चले गये। अतः यह हनुमत्-पद्धति का कीर्तन है, इसे लोग समझते नहीं हैं, यह शास्त्र-सम्मत है; इस तरह गान कई प्रकार का होता है। 'व्यास-पद्धति' का गान भी गान है, 'नारदीय-पद्धति' का गान भी गान है और 'हनुमत्-पद्धति' का गान भी गान है। किसी प्रकार से भी 'श्रीभगवद्गुणगान' होना चाहिए। 'गान' में नवधा भक्ति भी आ जाती है, भक्ति के सम्पूर्ण अंग आ जाते हैं, यह बहुत ही सरस साधन है। उदाहरण के लिए आप देखो कि ब्रज चौरासी कोस की परिक्रमा बहुत से लोग करते हैं किन्तु जो लोग अन्य बहुत-सी ब्रज-परिक्रमा कर चुके थे, जब उन्होंने मानगढ़ द्वारा संचालित ब्रज-परिक्रमा की तो उन्होंने अनुभव किया कि 'श्रीराधारानी ब्रजयात्रा' में सरसता है। उसका कारण यही वह हमारे यहाँ की ब्रजयात्रा में चालीस दिनों तक चौबीस घंटे होता रहता है और हमारे यहाँ उसी पर विशेष ध्यान दिया जाता है। हमारे यहाँ की यात्रा में इस बात का ध्यान रखा जाता है कि चाहे भोजन मिले न मिले परन्तु कीर्तन को विशेष महत्त्व दिया जाता है। अन्य ब्रजयात्राओं में भोजन-सेवा और अन्य सुविधाओं को विशेष महत्त्व दिया जाता है परन्तु हमारे ठाकुरजी का ऐसा नियम है कि ब्रजयात्रा में भक्ति का कोई भी अंग मत हो किन्तु रसमय कीर्तन सतत् चलता रहे। सन् १९८८ में जब प्रथम बार मानगढ़ से ब्रजयात्रा संचालित की गयी तो उस समय धन के अभाव में भोजन के नाम पर सात मन सत्तू पिसवाया गया और मैंने ब्रजयात्रियों से कहा कि यात्रा में हम भी सत्तू खायेंगे और आप लोग भी सत्तू खाइये परन्तु यात्रा में कीर्तन की सरसता होनी चाहिए और ऐसा हुआ भी। सत्तू खाकर सबने ब्रज-परिक्रमा की परन्तु अनवरत् कीर्तन होते रहने के कारण सरसता बनी रही। इसी सरसता के कारण हमारे यहाँ की यात्रा में कोई सुविधा न होने पर भी यात्रियों को ऐसे अलौकिक आनन्द की अनुभूति होती है, जो अन्य ब्रजयात्राओं में अनेकों प्रकार की भौतिक सुविधायें उपलब्ध होने पर भी वैसे आनन्द की अनुभूति नहीं होती है। गोपीगीत के प्रारम्भ में ही आचार्यों ने अपनी टीका में गान की प्रशंसा इसीलिए की क्योंकि यह सबसे अधिक सरस साधन है। गोपियों ने कृष्ण को प्राप्त करने के लिए उन्हें अनेक वनों में चारों ओर खोजा, सारे प्रयास कर लिए फिर भी वे नहीं मिले तो उन्होंने कहा –

अहो तस्य कलगीतेनाकृष्टा वयं यथा तदन्तिकं प्राप्तास्तथा सोऽप्यस्मद्गीतेनाकृष्टोऽस्मदन्तिकं प्राप्स्यतीत्याशयेन गानप्रवृत्तानां भगवत्प्रियाणां गानमुदाहरति। (श्रीधनपतिसूरिजी, गूढार्थदीपिका)

अरे, हम लोग कृष्ण के 'गान' से खिंचकर ही तो रात्रि के समय वन में दौड़ी चली आई थीं। इसलिए अपना अनुभव तुम क्यों नहीं लगाती ? प्रभु को बुलाने का सर्वोत्कृष्ट उपाय गान है, तुम गाओ और श्रीकृष्ण अवश्य आयेंगे।

जहाँ केवल हर समय उत्तमश्लोक भगवान् की चर्चा होती रहती है, जहाँ ग्राम्य कथा अर्थात् संसारी चर्चा नहीं है, वहाँ जाकर रहो, वहाँ रहने मात्र से ही तुम्हारी बुद्धि अपने-आप भगवान् में लग जायेगी।

सृष्टि-संरक्षिका 'श्रीनामाराधना'

बाबाश्री के प्रातःकालीन सत्संग (२/६/२०१०) से संकलित

जगपालक बिसेषि जन त्राता ।।

(श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड - २०)

गोस्वामीजी ने 'भगवन्नाम' को 'जगपालक' कहा है, इस बात को केवल श्रद्धावान व्यक्ति ही समझ सकता है। सांसारिक लोग नहीं समझ सकते हैं क्योंकि वे भौतिकतावादी होते हैं। संसार में अनेक तरह की व्याधियाँ बढ़ रही हैं, नये-नये ऐसे रोग उत्पन्न हो रहे हैं, जिनका कोई इलाज नहीं है, जिनका पहले कभी नाम नहीं सुना गया, इन्हीं रोगों के कारण आज मनुष्य की आयु घटती जा रही है। पहले लोग दीर्घजीवी हुआ करते थे। भागवत में सूतजी ने पहले ही इस बात को कह दिया –

प्रायेणाल्पायुषः सभ्य कलावस्मिन् युगे जनाः ।
मन्दाः सुमन्दमतयो मन्दभाग्या ह्युपद्रुताः ।।

(श्रीभागवतजी १/१/१०)

"कलियुग में सभी मनुष्यों की आयु कम हो जाएगी। 'मन्दाः' मन्द अर्थात् शरीर की जठराग्नि मन्द हो जाएगी, लोग मन्द बुद्धि के हो जायेंगे। 'मन्दभाग्या' लोगों के भाग्य मन्द हो जायेंगे, व्यक्ति और समाज अनेक उपद्रवों से ग्रसित हो जायेंगे।" सूतजी के द्वारा की गयी यह भविष्यवाणी वर्तमान काल में सत्य होती दिखाई पड़ रही है। वैज्ञानिक लोग रोग और उनकी चिकित्सा के सम्बन्ध में अनेकों अनुसन्धान कर रहे हैं परन्तु उनके द्वारा बनाई गयी औषधियों की अपेक्षा नये-नये रोगों की वृद्धि हो रही है और लोगों की शारीरिक-शक्ति घटती जा रही है, आयु घटती जा रही है। प्राचीनकाल में राजस्थान के प्रमुख वीर योद्धा महाराणा प्रताप जिस लोहे के कवच को पहनकर युद्ध करते थे और जिस भाले का वह प्रयोग करते थे, वे आज भी संग्रहालय में रखे हैं; बारह मन लोहे के कवच को फूल की तरह पहनकर वे युद्ध करते थे जबकि आज का मनुष्य तो बारह मन लोहा उठा भी नहीं सकता। इसलिए जैसे-जैसे कलियुग बढ़ता जा रहा है, दिन पर दिन हर चीज घटती जा रही है। जिस समय हम पहली बार ब्रज में आये थे और मानगढ़ पर वास करते थे तो उस समय बरसाने के श्रीजी के मंदिर में ग्वारिया बाबा के शिष्य प्रसिद्ध गोस्वामी श्रीकिशोरीलालजी के नेतृत्त्व में श्रीब्रजरसमय अद्भुत समाज होती थी, उसमें पचासों लोग बैठते थे। किशोरीलालजी बहुत बड़े गायक थे। उस समय के ब्रजवासी-गायकों की आवाज इतनी बुलन्द थी कि वे बिना माइक के भी यदि गा देते थे तो उनकी आवाज कई किलोमीटर दूर तक सुनाई देती थी। आजकल तो बिना माइक के कोई बोल ही नहीं सकता, अब के लोगों में ऐसी ताकत नहीं रह गयी है। कलियुग के प्रभाव से हर चीज मन्द है क्योंकि सारा पर्यावरण, अन्तरिक्ष-आकाश आदि दूषित हो गये हैं। हमसे (बाबाश्री से) किसी सन्त ने प्रश्न किया कि जब अभी दुनिया की ऐसी विकट स्थिति है तो भविष्य में क्या होगा ? हमने कहा कि इस बात को केवल आस्तिक लोग ही समझ सकते हैं कि भविष्य में भी केवल 'श्रीभगवन्नाम' ही रक्षा करेगा। जैसा कि गोस्वामी तुलसीदासजी ने लिखा – "जग पालक बिसेषि जन त्राता।" इन चौपाइयों का अर्थ भौतिक आदमी नहीं समझ सकता। एकबार दुनिया के प्रसिद्ध टी. वी. चैनल (डिस्कवरी चैनल) के लोग मेरा इन्टरव्यू लेने के लिए मानगढ़ पर आये। उन्होंने मुझसे पूछा कि आपके यहाँ से प्रतिवर्ष ब्रज चौरासी कोस की एक ब्रजयात्रा चलती है, जिसमें हजारों लोग निःशुल्क यात्रा करते हैं। इसी प्रकार आपके यहाँ से ब्रज-सेवा के भी अन्य बड़े-बड़े कार्य किये जा रहे हैं तो यह सब कैसे होता है ? मैंने उत्तर दिया कि ये सारे कार्य हरिनाम-कीर्तन के माध्यम से सम्पन्न होते हैं। उनको इस बात पर विश्वास ही नहीं हुआ और वे अत्यधिक आश्चर्यचकित होकर बोले कि केवल हरिनाम-कीर्तन के द्वारा इतने बड़े-बड़े कार्य कैसे किये जा सकते हैं अर्थात् यह कैसे सम्भव है कि आप केवल हरिनाम-कीर्तन करते हैं और करोड़ों रुपये के कार्य सफलतापूर्वक सम्पन्न हो जाते हैं। इस तरह देखा जाए तो आजकल का भौतिकवादी व्यक्ति हरिनाम के महत्त्व पर विश्वास ही नहीं

कर सकता; जबकि हमारे यहाँ सभी कार्य केवल 'भगवन्नाम' के बल पर ही सुचारु रूप से किये जाते हैं, इसका सम्बन्ध 'श्रद्धा' से है। श्रद्धाहीन व्यक्ति इस बात को बिलकुल नहीं समझ सकता कि केवल 'हरिनाम-कीर्तन' के बल पर मानमन्दिर पर प्रतिवर्ष होने वाली चालीस दिवसीय ब्रजयात्रा में पन्द्रह हजार से अधिक लोग निःशुल्क रूप से ब्रज-परिक्रमा का लाभ उठाते हैं अथवा यहाँ धाम सेवा, गौसेवा के जितने भी कार्य हो रहे हैं, वे केवल हरिनाम-कीर्तन के बल पर सम्पन्न होते हैं। जबकि देखा जाए तो हम लोग यहाँ केवल हरिनाम के बल पर ही जी रहे हैं क्योंकि हमारे यहाँ से ब्रज के पर्वतों की रक्षा का जो व्यापक आन्दोलन चलाया जा रहा है, इसमें अरबपति खनन माफियाओं के विरुद्ध संघर्ष किया जा रहा है। उन लोगों ने मानमंदिर के सदस्यों पर कई बार प्राणघातक हमले किये, किसी का अपहरण भी किया और फिर भी हम लोग जीवित बचे हैं तो यह 'हरिनाम' का ही चमत्कार है। इस बात पर विश्वास वही कर सकता है जिसके अन्दर थोड़ी बहुत भी 'श्रद्धा' होगी। किसी समय मैं मानमंदिर पर अकेला रहता था। उस समय मेरा किसी से परिचय नहीं था, कोई मेरा सहयोगी नहीं था और आज ब्रज के बड़े-बड़े कार्यों में अभूतपूर्व सफलता की प्राप्ति केवल 'भगवन्नाम' के बल पर हुई है। इसलिए सभी को 'भगवन्नाम' पर विश्वास करना चाहिए। कोई कितना भी बड़ा धनी हो जाए परन्तु भगवान् से बड़ा कोई नहीं है। संसार तो विनाश की ओर अग्रसर है। हम लोगों ने सन् २००९ की ब्रजयात्रा में कामवन में ब्रज के पर्वतों की रक्षा के लिए आमरण अनशन किया था तो उसमें भी सफलता के लिए अखण्ड कीर्तन किया जा रहा था। यदि उस समय हम लोग कीर्तन न करते तो सफलता न मिलती। सरकारी नौकरियों में आरक्षण पाने के लिए राजस्थान के गूजरों ने सरकार के विरुद्ध बहुत बड़ा आन्दोलन किया था, उसमें हजारों लोग मारे भी गये किन्तु उन्हें कोई सफलता नहीं मिली; ये सब अनुभव की बातें हैं। आन्दोलन करना, धरना देना कोई बहुत बड़ी चीज नहीं है; उसमें तो केवल साधन का अहं होता है; वस्तुतः सब कुछ करने वाला तो केवल 'भगवान्' ही है। मानमंदिर की 'ब्रजयात्रा' बिना नाम-संकीर्तन के नहीं चलती है। बिना 'भगवन्नाम' के कोई काम सफल नहीं हो सकता। मानमन्दिर के द्वारा ब्रज में कोसी में 'गोमती गंगा' के जीर्णोद्धार के लिए तीन साल तक लड़ाई चलती रही क्योंकि उस समय सभी मंत्री हमारे विरुद्ध थे परन्तु मानमन्दिर के द्वारा वहाँ तीन वर्षों तक अखण्ड कीर्तन किया गया और उसी के बल पर हमें सफलता प्राप्त हो गयी; ये सब हमारे अनुभव हैं। हमारे यहाँ लोग 'भगवन्नाम' के बल पर ही रुके हुए हैं। 'भगवान् के नाम' के बिना हम लोग जी नहीं सकते हैं। श्रीभगवान् के नाम की आराधना-शक्ति ही चराचर जीवों का पालन-पोषण व रक्षण करती है। यह निश्चित बात है कि इस समय सारा संसार विनाश की ओर जा रहा है। दुनिया के देशों में विनाश के बड़े-बड़े हथियार बनाए जा रहे हैं परन्तु भगवान् का नाम ही संसार का रक्षक है। केवल हरिनाम के बल पर ही विश्व अब तक बचा हुआ है, इसको नास्तिक व्यक्ति नहीं समझ सकता है। हम यदि अपना और संसार का भला चाहते हैं तो हमारा कर्तव्य है कि हम लोग निष्काम भाव से भगवन्नाम-कीर्तन करें, करायें और इसे अधिकाधिक बढ़ायें, जैसे - भागवत में धर्मराज ने कहा है –

तस्मात् सङ्कीर्तनं विष्णोर्जगन्मङ्गलमंहसाम्।
महतामपि कौरव्य विद्ध्यैकान्तिकनिष्कृतिम् ॥

(श्रीभागवतजी ६/३/३१)

भगवान् का संकीर्तन सारे विश्व का मंगल करता है, इससे बड़ी कोई औषधि नहीं है, इसके बल पर प्रह्लाद, विभीषण जीते। कोई यदि केवल अपने कर्म के बल पर लड़ाई जीतना चाहता है तो वह असम्भव है, ऐसा कभी नहीं हो सकता है। जो बात धर्मराज ने नाम संकीर्तन के बारे में कही कि यह विश्व का मंगल करने वाला है, वही बात तुलसीदासजी ने रामायण में नाम के बारे में कही –

नर नारायन सरिस सुभ्राता।
जग पालक बिसेषि जन त्राता ॥

अर्थात् 'भगवन्नाम' से ही जगत् का पालन होता है और यह विशेषकर भक्तों की रक्षा करने वाला है। जैसे भगवान् नर-नारायण के तप से संसार का पालन हो रहा है, उसी प्रकार 'भगवन्नाम' से भी संसार का पालन हो रहा है।

भगति सुतिय कल करन बिभूषन।
जग हित हेतु बिमल बिधु पूषन॥
स्वाद तोष सम सुगति सुधा के।
कमठ सेष सम धर बसुधा के॥

(श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड - २०)

'भगवन्नाम' भक्ति रूपी सुहागिन स्त्री का सुहाग है। बिधु 'चन्द्रमा' व पूषन 'सूर्य' भी यही (भगवान् का नाम) है। एक बार अगस्त्य ऋषि ने 'भगवन्नाम' के बल पर सूर्य के जैसा कार्य किया था; ये ऋषि-मुनि नाम की शक्ति को जानते थे।

'श्रीभगवन्नाम' में अमृत के समान स्वाद और तोष अर्थात् तुष्टि है। जिस प्रकार शेषजी और कच्छपजी पृथ्वी को धारण करते हैं, उसी प्रकार 'भगवन्नाम' भी पृथ्वी को धारण करता है। पद्मपुराण में कथा है कि मन्दराचल पर्वत को धारण करने के लिए भगवान् का कच्छप अवतार हुआ, सभी देवताओं ने कच्छप भगवान् की स्तुति की तो उन्होंने कहा कि तुम लोग क्या वरदान चाहते हो ? देवताओं ने कहा कि आप पृथ्वी को धारण कर लीजिये। शेष और कच्छप भगवान् ही पृथ्वी को धारण करते हैं, वही गुण 'भगवान् के नाम' में भी है। 'भगवन्नाम' की इसी विशेषता के ही कारण ब्रह्मा और शिवजी इसे सदा अपने हृदय में धारण करते हैं। परन्तु हम लोगों की नाम के प्रति ऐसी आस्था नहीं है। दो चीजें होती हैं – स्वाद और तोष; 'भगवन्नाम' में अमृत से भी अधिक स्वाद है, हम लोगों को इसका अनुभव इसलिए नहीं होता है क्योंकि हमारे मन में विषयों का विष भरा हुआ है। गोस्वामीजी ने कहा

विषय नीम कटु लगत न ताही॥

जब तक अन्तःकरण स्वच्छ नहीं होता, तब तक ब्रह्म संस्पर्श का अनुभव नहीं होता है। भगवान् ने गीता में कहा है –

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते॥

(श्रीगीताजी ६/२८)

जब कल्मष समाप्त हो जाता है, तब साधक ब्रह्मसुख का भोग करता है, ब्रह्म का स्वाद आदि सभी चीजें उसके अनुभव में आ जाती हैं। इसी बात को गोस्वामीजी ने दोहावली में भी कहा है –

जथा भूमि सब बीजमय, नखत निवास अकास।
राम नाम सब धरममय, जानत तुलसीदास॥

जैसे - सारी पृथ्वी बीजमयी है। पेड़-पौधे, घास आदि पृथ्वी से पैदा होते हैं, आकाश में जैसे अनन्त नक्षत्र हैं; उसी तरह से श्रीभगवान् का नाम सभी धर्मों का मूल आधार है। तुलसीदासजी ने सब जगह अपनी रचनाओं में अपनी निन्दा की है किन्तु यह पहला दोहा है जिसमें वह कह रहे हैं कि मैं 'राम नाम' की महिमा को जानता हूँ, इसका आशय है कि वे वाल्मीकिजी के अवतार हैं, उसी नाम के प्रभाव से उन्होंने 'श्रीरामचरितमानस' की रचना की और संसार को बचाया। ऐसा वह अहंकार के कारण नहीं कह रहे हैं, वे कहते हैं कि मैंने जो कुछ भी किया है, सब राम नाम के प्रभाव से किया है। श्रीइष्ट के नाम में असीम आस्था होने के कारण ही गोस्वामीजी कहते हैं –

यथा भूमि सब बीजमय नखत निवास अकास।
राम नाम सब धर्ममय जानत तुलसीदास॥

जिस तरह आकाश में अनन्त नक्षत्र हैं, लोक हैं; उसी तरह 'श्रीभगवन्नाम' भी सर्वव्यापी व सम्पूर्ण सृष्टि का संरक्षक-संपोषक है।

वसा, शुक्र, रक्त, मज्जा, मूत्र, मल, नाक का मल, कान का मल, कफ, जुआँ, पसीना, आँसू आदि ये सब मल ही शरीर के रूप में हैं। ऐसे मलों से भरे शरीर से जीव की आसक्ति नहीं हटती, यही भगवान् की विचित्र माया है। कितनी भी सुन्दर स्त्री है, आखिर उसके शरीर से निकलता तो है मल-मूत्र ही और उस मल-मूत्र पर मरने वाले अर्थात् मल-मूत्र की पिण्डी स्त्री से भोग-सुख चाहने वाले क्या भक्त हो सकते हैं?

महाभागवत 'श्रीभीष्मजी'

बाबाश्री द्वारा निःसृत 'श्रीभागवत-कथा' (फरवरी १९८५) से संकलित

जिस समय हस्तिनापुर से श्यामसुन्दर शर-शय्या पर पड़े हुए पितामह भीष्मजी के पास गये; अपने भक्त का मान बढ़ाने के लिए प्रभु वहाँ गये। श्रीश्यामसुन्दर के पीछे-पीछे अनेकों महान ऋषि जैसे - नारदजी, व्यासजी, परशुरामजी, वशिष्ठजी, विश्वामित्रजी, भारद्वाजजी, गौतम ऋषि, शुकदेव मुनि, देवगुरु बृहस्पतिजी इत्यादि भी गये। उस समय भीष्म पितामह अपने हृदय में श्यामसुंदर की छवि का ध्यान कर रहे थे, उन्होंने आँखे खोलीं तो देखा कि सामने पाण्डव खड़े थे, उन्हें देखकर भीष्मजी के नेत्रों में आँसू आ गए और बोले कि ये पाण्डव तो बड़े भक्त हैं, क्या ये कष्ट पाने योग्य हैं। बेचारी कुन्ती बाल विधवा है। काल की लीला कौन जाने, ये बेचारे कष्ट पाने योग्य तो नहीं है। देखो, ये जो सामने खड़े हैं, ये साक्षात् भगवान् आदि नारायण हैं, इनके प्रभाव को कौन जान सकता है ? भीष्मजी ने पांडवों से कहा कि तुम लोग इन्हें अपने मामा का पुत्र समझते हो, प्रिय समझते हो। अर्जुन ! तुम इन्हें अपना मित्र समझते हो, ठीक है, क्यों न समझोगे, इन्होंने काम ही ऐसे किये हैं। इनकी लीला ही ऐसी है कि ये स्वयं नौकर बन जाते हैं, स्वयं ही अपनी महिमा घटाते हैं तो फिर तुम इनको अपना मित्र क्यों नहीं समझोगे। ये जगत के पिता भगवान् होकर भी अपनी महिमा स्वयं घटाते हैं। ये 'कृष्ण' प्रेम के आधीन हो जाते हैं, दास बन जाते हैं, अपनी महिमा को छोड़ देते हैं क्योंकि इनका ऐसा ही स्वभाव है। प्रेम के कारण ये अर्जुन के सारथि बने।

तभी तो सूरदास जी ने गाया है –

सबसे ऊँची प्रेम सगाई।
प्रेम बिबस पारथ रथ हाँक्यो, भूल गए ठकुराई ॥
ऐसी प्रीति बढ़ी या ब्रज में, गोपिन नाच नचाई।

इसीलिए भीष्म पितामह पांडवों से कहते हैं कि यह तो प्रेम की महत्ता है कि ये भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हारे दूत बने, तुम्हारे सारथि बने; किन्तु ऐसा होने पर भी, ऊँचे-नीचे कार्य करने पर भी इनकी महिमा नहीं घटती है। आज श्यामसुंदर यहाँ मेरे पास आये हैं तो क्यों आये हैं, ये तुम लोगों को मेरे द्वारा उपदेश दिलाने नहीं आये हैं, ये वस्तुतः मेरे ऊपर कृपा करने के लिए आये हैं। देखो, तुम लोग इनकी कृपा देख लो कि मैं प्राण त्याग कर रहा हूँ और प्राणप्यारा मेरे सामने आ गया है, यह कृपा है; ये वही कृष्ण हैं जिनके नाम-कीर्तन की अपार महिमा है, इनके नाम का कीर्तन करते हुए जो योगी शरीर त्याग करते हैं, वे निश्चय ही मुक्त हो जाते हैं।

नामकीर्तन का मरणावस्था को प्राप्त मनुष्य पर क्या प्रभाव पड़ता है, इस सम्बन्ध में श्रीबाबामहाराज अपने जीवन की घटना बताते हैं कि मानमंदिर के नीचे बसे ग्राम मानपुर की यह घटना है। इस गाँव में रघुवीर जी नामक एक भक्त थे, वह गह्वरवन में जाकर भजन किया करते थे। जब उनका अंत समय आया तो उन्होंने एक मेरे घनिष्ठ सहयोगी ब्रजवासी के द्वारा खबर भिजवाई कि श्रीबाबा मुझे आकर देख जायें। जब मैं उनके घर के निकट पहुँचा तो मार्ग से ही उनकी उल्टी साँस चलने की आवाज सुनाई पड़ रही थी, उन्हें होश भी नहीं था, न उठ सकते थे, न बोल सकते थे। मानपुर के ब्रजवासियों के साथ हमने उनकी सद्गति के लिए वहाँ नाम-कीर्तन किया। नाम- कीर्तन के बाद एक पद गाया –

मदन गोपाल शरण तेरी आयो।
श्रीभट के प्रभु दियौ अभय पद,
यम डरप्यो जब दास कहायो ॥

मैंने सोचा कि इस समय इनके ऊपर यमराज सवार हैं तो घंटों तक तीव्र ध्वनि के साथ इस पद को हम लोगों ने गाया। आश्चर्यजनक बात यह हुई कि इस पद को सुनकर वह उठकर बैठ गए, उन्हें होश आ गया, उन्होंने हाथ के इशारे से मुझे अपने पास बुलाया और फिर मेरा हाथ अपने सिर पर रखवाया। इसके बाद मैं मानमंदिर चला आया और थोड़ी देर बाद उनका निधन हो गया। कथनाशय है कि नाम-कीर्तन की महिमा केवल शास्त्रों में

ही नहीं लिखी है, यह तो अनुभव की बात है कि नामकीर्तन की महिमा सत्य है, चमत्कारपूर्ण है किन्तु हमलोग इस पर आस्था नहीं रखते हैं।

भीष्मपितामह कहते हैं –

भक्त्यावेश्य मनो यस्मिन् वाचा यन्नाम कीर्तयन्।
त्यजन् कलेवरं योगी मुच्यते कामकर्मभिः॥

(श्रीभागवतजी १/९/२३)

शरीर छोड़ते समय नाम-कीर्तन करना चाहिए। कोई भी आदमी जिसके प्राण छूट रहे हों, उस समय नाम- कीर्तन करना ही सबसे बड़ी दवाई है।

भीष्मजी कहते हैं कि नामकीर्तन करते हुए जो देह त्याग करता है, वह निश्चित ही मुक्त हो जाता है। जब तक मैं देह त्याग नहीं करूँ, ये श्यामसुंदर मेरी प्रतीक्षा करें, यहीं विराजें –

"स देवदेवो भगवान् प्रतीक्षताम्"

(श्रीभागवतजी १/९/२३)

देखो, भक्त का भगवान् पर कितना अधिकार होता है।

सूतजी कहते हैं कि भीष्म पितामह ने अंतिम समय पांडवों को बहुत से उपदेश दिए। उस समय उत्तरायण काल आया, जब उन्हें शरीर का त्याग करना था। जब उनके जाने का समय आया तो पितामह ने श्यामसुंदर की स्तुति करते हुए कहा - मैं वितृष्ण होकर श्यामसुंदर में अपना मन लगा रहा हूँ। श्यामसुंदर कैसे हैं ? वे नीलवर्ण के हैं, अर्जुन के सखा हैं। मैंने युद्धभूमि में उनके ऊपर बाण चलाये, उस समय लीलादृष्टि से उनके कवच कट गए और मेरे पैने बाण उनके शरीर में तीक्ष्णता से चुभ गए, उनकी वह मेरे ऊपर कृपा वाली छबि मुझे याद आती है, घोड़ों की टाप से उठी धूल से लिपटी हुई उनकी अंगकान्ति मुझे आज तक याद है। अर्जुन ने युद्ध में किसी का वध नहीं किया, ये तो कन्हैया जी रथ पर आगे सारथि बनकर बैठे रहते थे और अपनी दृष्टि से ही योद्धाओं की आयु हर लेते थे और उन कृष्ण की दृष्टि से पहले से ही मरे हुए योद्धाओं पर अर्जुन बाण चलाया करते थे। जिन श्रीकृष्ण ने अर्जुन को गीता-ज्ञान प्रदान किया, उन्होंने मेरी प्रतिज्ञा सत्य करने के लिए अपनी प्रतिज्ञा तोड़ दी और उस समय की उनकी वह छटा मुझे याद आती है। जब वह मुझे मारने के लिए रथ से कूद पड़े, उस समय उनका दुपट्टा पीछे छूट रहा था –

"वा पट पीत की फहरान"

उनका दुपट्टा फहराता हुआ शरीर से अलग खिसका जा रहा था और वह मेरा वध करने के लिए मेरी ओर चले आ रहे थे। अर्जुन ने जिन-जिनका वध किया, चूँकि उन लोगों ने शरीर छोड़ते समय उनके सारथि श्रीकृष्ण का दर्शन किया था, अतः उन सभी को भगवत्प्राप्ति हो गयी। अंत में भीष्म जी ने श्रीकृष्ण की महारास लीला का स्मरण किया। ब्रजलीला से कौन बच सकता है ? कुन्ती जी ने भी ब्रज की याद की, भीष्म पितामह भी ब्रज की याद करते हुए कहते हैं कि जब रास के समय अचानक श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गए तो गोपबालायें उनका स्मरण करते-करते उन्हीं के स्वरूप को प्राप्त हो गयीं। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भी जिन्होंने प्रथम पूजा प्राप्त की, समस्त भेदों को छोड़कर मैं उन्ही श्यामसुंदर का ध्यान कर रहा हूँ जो सबके हृदय में स्थित हैं।

इस प्रकार श्रीकृष्णरूप का चिंतन करते हुए भीष्मजी ने देह त्याग कर दिया। उस समय आकाश में नगाड़े बजने लगे, फूलों की वर्षा होने लगी। सभी मुनिगण श्यामसुंदर को हृदय में धारणकर अपने आश्रमों को लौट गए। युधिष्ठिर भी भगवान् श्रीकृष्ण के साथ हस्तिनापुर चले आये और उनकी अनुमति से धर्मपूर्वक पृथ्वी का शासन करने लगे।

गौ-सेवकों की जिज्ञासा पर माताजी गौशाला का

Account number दिया जा रहा है –

SHRI MATAJI GAUSHALA, GAHVARVAN ,BARSANA, MATHURA

Bank – Axis Bank Ltd **A/C – 915010000494364**

IFSC – UTIB0001058 **BRANCH – KOSI KALAN**

MOB. NO. - 9927916699

भक्ति का आभूषण 'क्षमाशीलता'

बाबाश्री द्वारा निःसृत 'श्रीभागवत-कथा' (फरवरी १९८५) से संकलित

श्रीशुकदेवजी कहते हैं -

अंबरीषो महाभागः सप्तद्वीपवतीं महीम् ।
अव्ययां च श्रियं लब्ध्वा विभवं चातुलं भुवि ॥

(श्रीभागवतजी ९/४/१५)

नाभागनन्दन श्रीअम्बरीषजी बहुत बड़े भक्त थे। पृथ्वी के सातों द्वीप, अव्यय लक्ष्मी और अतुलनीय ऐश्वर्य उनको प्राप्त था, फिर भी वे इन्हें स्वप्न के समान मानते थे। इन्होंने अपने मन को भगवान् श्रीकृष्ण के चरणकमलों में लगा रखा था। वाणी से वे सदा भगवान् का कीर्तन किया करते थे, उनके गुणों का गान करते थे। स्वयं अपने हाथों से भगवान् के मन्दिर में बुहारी लगाते थे। कानों से वे भगवान् की कथा सुना करते थे –

स वै मनः कृष्णपदारविन्दयोः
वचांसि वैकुण्ठगुणानुवर्णने ।
करौ हरेर्मन्दिरमार्जनादिषु
श्रुतिं चकाराच्युतसत्कथोदये ॥

(श्रीभागवतजी ९/४/१८)

नेत्रों से भगवान् की मूर्ति और उनके मंदिरों का दर्शन करते थे –

मुकुन्दलिंगालयदर्शने दृशौ
तद्भृत्यगात्रस्पर्शेऽङ्गसंगमम् ।
घ्राणं च तत्पादसरोजसौरभे
श्रीमत् तुलस्या रसनां तदर्पिते ॥

(श्रीभागवतजी ९/४/१९)

सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि वे भगवान् के भक्तों के शरीर का स्पर्श करके अपना शरीर पवित्र करते थे। भगवान् के भक्तों का शरीर दिव्य माना जाता है। नाक से वे भगवान् के चरणों में अर्पित तुलसी की गन्ध लेते थे, रसना से भगवान् का प्रसाद ग्रहण करते थे। उनके पैर पैदल ही भगवान् के धाम की यात्रा करने में लगे रहते, सिर से वे भगवान् के चरणकमलों की वंदना करते थे। सरस्वती नदी के किनारे अनेकों अश्वमेध यज्ञ भी उन्होंने किये थे। उनकी प्रजा में एक भी व्यक्ति स्वर्ग की इच्छा नहीं करता था। सारी प्रजा भगवान् की भक्ति में तल्लीन रहती थी। जब राजा भक्त होगा तब प्रजा भी भक्त होगी। इनकी प्रजा में प्रत्येक व्यक्ति स्त्री, पुरुष धन आदि को मिथ्या समझता था, भक्ति के अतिरिक्त कोई कुछ नहीं करता था। अम्बरीषजी की अनन्य भक्ति से प्रभावित होकर भगवान् ने उनकी रक्षा के लिये सुदर्शन चक्र को नियुक्त कर दिया था। इनकी रानी भी भक्ति में इनसे कम नहीं थी – **"महिष्या तुल्यशीलया"** उनकी कथा श्रीभक्तमालजी में विस्तार से वर्णित है। भक्तमाल के अनुसार तो वह भक्ति में अम्बरीषजी से भी आगे चली गयी थीं। अम्बरीषजी राजा होकर के स्वयं भगवान् की सेवा में चक्की चलाया करते थे। एक दिन चक्की चलाते समय उन्हें शीतल हवा का स्पर्श हुआ तो उन्होंने देखा कि स्वयं प्रभु श्यामसुंदर अपने पीताम्बर से उन पर हवा कर रहे थे; अम्बरीषजी यह देखकर रोने लगे और बोले –

'हे नाथ ! आप मेरे लिये इतना कष्ट क्यों करते हैं ?'

भगवान् बोले – 'जब तुम मेरे लिये इतना कष्ट करते हो तो क्या मैं तुम्हारी सेवा के लिये थोड़ा भी नहीं कर सकता ?'

इसलिये प्रभु की सेवा भी हम लोगों को स्वयं करना चाहिए। एकबार अम्बरीषजी भगवान् श्रीकृष्ण की आराधना हेतु एक वर्ष तक एकादशी व्रत करने के लिये मधुवन (ब्रज) में आये। व्रत की समाप्ति पर कार्तिक महीने में उन्होंने तीन रात का उपवास किया और एक दिन यमुनाजी में स्नान करके मधुवन में उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा की। इसके बाद उन्होंने ब्राह्मणों को भोजन कराकर उन्हें साठ करोड़ गायें दान दी। उसी समय वहाँ दुर्वासाजी अतिथि के रूप में आये। अम्बरीषजी ने उनसे कहा – 'आज मेरा द्वादशी का पारण है, आप हमारे यहाँ ही भोजन कीजिये।' दुर्वासाजी ने अम्बरीषजी की प्रार्थना स्वीकार कर ली और वे यमुनाजी में स्नान करने चले गये, वे ब्रह्म का ध्यान करते हुये यमुनाजी के पवित्र जल में स्नान करने लगे। अन्य पुराणों में ऐसी कथा है कि वे अम्बरीष जी की परीक्षा

लेने के लिये ही आये थे। इधर द्वादशी घड़ी भर शेष रह गयी थी किन्तु दुर्वासाजी नहीं आये। समय पर यदि द्वादशी का पारण न किया जाय तो एकादशी का फल नष्ट हो जाता है और यदि दुर्वासा जी को बिना खिलाये पारण कर लें तो अतिथि धर्म नष्ट हो जाता है। ब्राह्मणों ने उनसे कहा कि आप प्रभु का चरणामृत पी लीजिये, उससे आपका पारण भी हो जायेगा तथा अतिथि को खिलाये बिना भोजन नहीं करना चाहिए, यह अतिथि धर्म भी निभ जायेगा। ब्राह्मणों के परामर्श से अम्बरीष जी ने चरणामृत पी लिया। उधर दुर्वासा जी को ध्यान में पता चल गया कि अम्बरीष जी ने चरणामृत पी लिया है। उसी समय वे यमुना-स्नान करके वापस आ गये और अम्बरीषजी के प्रति अत्यधिक क्रोधित हो गए। उन्होंने अम्बरीषजी से डाँटकर कहा – 'तू बड़ा क्रूर है, धन के मद में मतवाला हो गया है, इसके अन्दर भक्ति बिल्कुल भी नहीं है। यह अभक्त है, भक्ति का ढोंग करता है, अपने को बड़ा मानता है, मुझ जैसे अतिथि को भोजन का निमंत्रण देकर मुझे खिलाये बिना इसने स्वयं खा लिया। अच्छा देख, अब मैं तुझे इसका दंड देता हूँ।' ऐसा कहकर दुर्वासाजी ने अपनी एक जटा उखाड़ी और उसे कृत्या बनाकर अम्बरीष जी को मार डालने के लिये उनकी ओर छोड़ा। वह कृत्या तलवार लेकर अम्बरीषजी को मारने के लिये दौड़ी। भगवान् ने सुदर्शन चक्र को अम्बरीषजी की रक्षा के लिये पहले से ही नियुक्त कर रखा था। जो भगवान् की भक्ति करता है, सुदर्शन चक्र उसकी रक्षा करते हैं –

कृष्ण कृष्ण कहो बारम्बारा,
चक्र सुदर्शन है रखवारा।

सुदर्शन चक्रजी अम्बरीषजी की रक्षा के लिये चल दिए। वे देख रहे थे कि अम्बरीष जी को नष्ट करने के लिये कृत्या आ रही है। चक्र ने आकर उस कृत्या को जलाकर राख का ढेर कर दिया, इस प्रकार जलाया जैसे - आग क्रोधित सर्प को जलाकर राख कर देती है। कृत्या को जलाकर अब चक्र दुर्वासाजी के पीछे दौड़ा। दुर्वासाजी चक्र से भयभीत होकर भागे, वे दिशाओं में भागे, समुद्र के भीतर गए, गुफाओं में गए, अतल-वितल आदि नीचे के लोकों में गए, स्वर्ग तक गये किन्तु जहाँ-जहाँ भी वे जाते, सुदर्शन चक्र को अपने पीछे लगा देखते। इस प्रकार एक वर्ष तक दुर्वासाजी भागते रहे। दुर्वासाजी को ऐसा कष्ट क्यों भोगना पड़ा, यह कथा भागवत में तो नहीं है किन्तु अन्य पुराणों में वर्णित है। दुर्वासाजी का जब विवाह हुआ तो इनकी स्त्री कर्कशा थीं, कड़वा बोलतीं थीं, इनके श्वसुर ने दुर्वासाजी से कहा था कि मेरी पुत्री में एक ही दोष है कटु वाणी बोलने का, तुम इसके दोष को सदा क्षमा करते रहना।

दुर्वासाजी ने कहा – 'मैं इसकी सौ गलतियाँ क्षमा कर दूँगा, इसके आगे की गलतियाँ क्षमा नहीं करूँगा।' इनके श्वसुर ने कहा ठीक है। इस प्रकार दुर्वासा जी का विवाह हो गया। विवाह होने के बाद ही दुर्वासा जी ने अपनी स्त्री की गलतियों को गिनना शुरू कर दिया। एक बार उन्होंने स्त्री से कहा – 'जल लाओ।' वह बोली – 'लाऊँगी।' दुर्वासा जी ने इसे गिन लिया – 'पहली गलती।'

दुर्वासा जी कड़ाई से बोले – 'नहीं लाती है जल।'

स्त्री बोली – 'अरे, जोर से क्यों बोलते हो ?' दुर्वासा जी ने गिन लिया – 'दूसरी गलती।'

वे बोले – 'जवाब देती है, मेरी बात नहीं मानती है।'

स्त्री बोली – 'अरे लाती हूँ, धीरज रखो।'

दुर्वासा जी ने इसे भी गलती मानकर गिन लिया। इस प्रकार एक ही दिन में स्त्री की छोटी-छोटी गलतियाँ गिनकर उन्होंने सौ तक की गिनती पूरी कर ली तथा इससे आगे की गलती करने पर वे बोले – 'जा भस्म हो जा।' इतना कहने पर स्त्री जलकर भस्म हो गयी। जब दुर्वासा जी के श्वसुर को पता चला तो वे उनके पास आकर बोले – 'दुर्वासा ! तुमने मेरी पुत्री के साथ बड़ा अन्याय किया। तुम्हें स्त्री और पति के धर्म का ज्ञान नहीं है। मैं तुम्हें शाप देता हूँ कि जिस प्रकार तुमने मेरी बेटी को जलाया है, इसी प्रकार तुम्हें भी वर्ष भर तक जलना पड़ेगा। तुम्हारी इतनी अपकीर्ति होगी कि लोग युगों तक तुम्हारी अपकीर्ति का वर्णन करेंगे।'

इसलिये स्त्री हो या पुरुष हो, क्रोध करना सभी के लिये अत्यन्त हानिकारक है। सबको क्षमाशील होना चाहिए, नहीं तो दुर्वासा जैसा तेजस्वी होने पर भी क्रोधी व्यक्ति को पछताना पड़ेगा।

धीर कौन है? जो अपनी प्रशंसा स्वयं नहीं करता है।

श्रीभक्तमाल-सुमेरु 'गोस्वामी तुलसीदासजी'

बाबाश्री द्वारा कथित गो.तुलसीदासजी के चरित्र (२५/६/२०१०) से संकलित

श्रीभक्तमालजी में गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी की कथा वर्णित है; ये अवतरित महापुरुष थे । जीव-कल्याण साधारण व्यक्ति नहीं कर सकता, जीवों का सच्चा हित तो महापुरुष लोग ही करते हैं।

जो विशुद्ध भक्ति सिखाने वाला ही महापुरुष है जो संसारी जीवों का कल्याण करता है। सच्चे संत के अन्दर किसी भी प्रकार की संकीर्णता नहीं होती है, इस सिद्धांत को श्रीमद्भागवत में कहा गया है –

न यस्य स्वः पर इति वित्तेष्वात्मनि वा भिदा।
सर्वभूतसमः शान्तः स वै भागवतोत्तमः ॥

(श्रीभागवतजी ११/२/५०)

उत्तम भक्त में मेरा-तेरा की भावनाएँ नहीं होती हैं । जो घर-परिवार, जमीन-जायदाद, धन-संपत्ति, शरीर आदि में भेद-बुद्धि (मैं-मेरापन) नहीं रखता; वही उत्तम भागवत है, ये प्रमाण है क्योंकि मेरा-तेरा यही माया है –

मैं अरु मोर तोर तैं माया।
जेहिं बस कीन्हें जीव निकाया ॥

(रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड - १५)

संसार में सारे जीव इस 'मेरा-तेरा' में नाच रहे हैं, ये मेरा-तेरा की बुद्धि ही 'संकीर्णता' है, जो अपराध कराती है। 'कलि' माने लड़ाई या भेद-फूट; इसलिए प्रायः कलियुग में एकता का अभाव है। अगर एकता है तो दुष्टों में होती है – "चोर-चोर मौसेरे भाई ।" दूसरे धर्मों में एकता मिल जायेगी लेकिन हिन्दू-धर्म में नहीं मिलेगी, यदि हिन्दू-धर्म में एकता हो जाए तो कलियुग ही चला जायेगा, कलियुग का बिल्कुल नाश हो जायेगा।

श्रीतुलसीदासजीमहाराज ऐसे अद्भुत रामोपासक हुए हैं, जिन्होंने श्रीराम-कृष्ण में अभेद-भाव स्थापित किया है –

राम कृष्ण दोउ एक हैं, अंतर नहीं निमेष।
इनके नयन गंभीर हैं, इनके चपल विशेष ॥
कित मुरली कित चन्द्रिका, कित गोपियन के साथ।
अपने जन के कारने, श्रीकृष्ण भये रघुनाथ ॥

गो.श्रीतुलसीदासजीमहाराज सर्वथा साम्प्रदायिक संकीर्णताओं से शून्य थे, उन्होंने अपने सत्संग व सम्पूर्ण रचनाओं 'द्वादश ग्रंथों' में कहीं भी अपने 'गुरुदेव व सम्प्रदाय' का स्पष्ट नाम नहीं लिया है) व दीनता की पराकाष्ठा उनके जीवन में प्रत्यक्ष दिखाई देती है, जैसा उन्होंने कहा है, वैसा करके भी दिखाया –

तुलसी जाके मुखन ते धोखेउ निकसत राम।
ताके पग की पगतरी मोरे तन को चाम ॥

सुदैन्य के साक्षात् स्वरूप होने के कारण भक्तमालकार श्रीनाभाजीमहाराज ने इन्हें 'भक्तमाल का सुमेरु' निर्धारित किया है।

श्रीगोस्वामीजी के चरित्र-लेखन में नाभाजी ने वर्णन किया है –

कलि कुटिल जीव निस्तार हित,
बाल्मीकि तुलसी भयो ॥
त्रेता काव्य निबन्ध कियौ शतकोटि रामायन।
इक अक्षर उद्धरै ब्रह्म हत्यादि परायन ॥
अब भक्तनि सुख दैन बहुरि लीला विस्तारी।
राम चरन रस मत्त रहत अहनिसि व्रतधारी ॥
संसार अपार के पार कौ सुगम रूप नौका लयौ।
कलि कुटिल जीव निस्तार हित बाल्मीकि तुलसी भयो ॥

(श्रीभक्तमालजी, छप्पय १२९)

श्रीतुलसीदासजी 'वाल्मीकिजी' के अवतार थे।

शास्त्रों में कहा गया है कि कलियुग में श्रीभगवन्नाम (कथा-कीर्तन रूपी सत्संग) के अतिरिक्त कोई भी साधन नहीं है, ये बात डंके की चोट पर गोस्वामीजी ने भी कही है –

एहि कलिकाल न साधन दूजा।
जोग जग्य जप तप ब्रत पूजा ॥
रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि।
संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि ॥

(श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड – १३०)

गोस्वामी तुलसीदासजी ने इतना खुला व स्पष्ट लिखा है कि इस कलिकाल में अन्य साधन (योग, यज्ञ, जप, तप,

व्रत, पूजा इत्यादि) करना बिल्कुल व्यर्थ है; एकमात्र श्रीभगवान् के नाम, रूप, लीला, गुण, धाम, जन इत्यादि की महिमा के स्मरण-गान-श्रवण करने में ही मानव-जन्म की सच्ची सार्थकता है। आश्चर्य की बात यह है कि रामायण की कथा कहने-सुनने वाले लोग ही बड़े-बड़े यज्ञ करते हैं, इसका तात्पर्य यह हुआ कि वे लोग गोस्वामीजी के अभिप्राय को समझ ही नहीं पाए। योग, यज्ञ, ब्रत, तप आदि ये सब साधन कलियुग में है ही नहीं; केवल भगवान् के नाम-रूप-लीला-गुणों का स्मरण-गान-श्रवण करो, यही विशुद्ध भक्ति है। सच्चे रसिक भक्तजन नित्य निरन्तर श्रीभगवान् की लीलाओं का चिन्तन व गान करते हैं।

अधिकतर देखा गया है कि जितने बड़े-बड़े यज्ञ होते हैं, उन्हें भगवान् की रसोपासना से विमुख तपसी, त्यागी, महात्यागी लोग ही करते हैं। इसीलिए श्रीनाभाजीमहाराज ने कहा कि कलियुग में कुटिल जीवों के निस्तार (कल्याण) के लिए वाल्मीकिजी 'तुलसीदास' बनकर आये और शुद्ध भक्ति के साधनों का उल्लेख किया, इतने निर्णयात्मक ढंग से उन्होंने कहा है –

विनिश्चितं वदामि ते न अन्यथा वचांसि मे।
हरिं नरा भजन्ति येऽतिदुस्तरं तरन्ति ते॥

(श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड -१२२)

मैं निश्चय करके कह रहा हूँ, मेरी वाणी कभी अन्यथा नहीं हो सकती – केवल भगवान् की विशुद्ध भक्ति से भवसागर पार हो जाओगे। भक्ति के साधन यही हैं – भगवान् के गुणों को गाओ, भगवन्नाम लो और अन्य साधन मत करो (लेकिन इस बात को समझना बहुत कठिन है, अन्य साधनों में हम लोगों का अभिनिवेश हो जाता है)।

संत-कृपा से ही रसमयी आराधना (श्रीगुणगान) में मन लगता है; इसी उपासना की महिमा समझाने के लिए ही श्रीवाल्मीकिजीमहाराज 'गोस्वामी तुलसीदास' के रूप में प्रकट हुए। वाल्मीकिजी ने सौ करोड़ श्लोकों की रामायण बनाई थी (जो आजकल दिखाई पड़ रही है, वह तो बहुत थोड़ी-सी है) वाल्मीकि कृत रामायन तो देवलोक में चली गयी थी, उसके एक-एक अक्षर के उच्चारण से ब्रह्म-हत्या जैसे महापाप चले जाते हैं। वही वाल्मीकिजी भक्तों के ऊपर दया करने के लिए फिर से संसार में आये और श्रीभगवल्लीला का विस्तार किया व श्रीरामचरितमानस बनाया क्योंकि भगवान् के चरणों की रसमयी भक्ति में रात-दिन व्रत (भक्ति का सुदृढ़ प्रण) ले करके मस्त रहते थे। भवसागर पार करने के लिए 'श्रीरामायणजी' एक नाव है, नौका छोड़ गए हैं कि हम तो जा रहे हैं, तुम लोग इस नाव पर चढ़ करके आ जाना तो सहज ही भवसागर पार हो जाओगे। गोस्वामी तुलसीदासजी के सद्ग्रन्थ 'श्रीरामचरितमानस' से आध्यात्मिक-जगत में अलौकिक-अद्वितीय कार्य हुआ है; गोस्वामीजी नहीं हैं संसार में फिर भी श्रीभगवद्-यश चल रहा है रामायण के द्वारा।

संवत १५५४ में सावन के महीने में शुक्ल पक्ष में सप्तमी तिथि शनिवार को संध्या के समय अभिजित नक्षत्र में तुलसीदासजी का जन्म हुआ, राजापुर नामक गाँव था, आत्माराम दुबे इनके पिता थे, इनकी माता का नाम हुलसी था, ये बारह महीने गर्भ में रहे, विचित्र इनका जन्म था –

पंद्रह सौ चौंवन विषै, कालिन्दी के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी धर्‌यो शरीर॥

गोस्वामी तुलसीदासजी का जन्म 'राजापुर' में इसलिए हुआ क्योंकि 'राजापुर' ग्राम से ही भगवान् श्रीसीताराम, लक्ष्मणजी वन में गये हैं तथा सभी अयोध्यावासी भी चित्रकूट में प्रभु से मिलने के लिए इसी मार्ग (राजापुर गाँव) से होकर गये, जनकजी आदि मिथिलावासी भी चित्रकूट में श्रीराम से मिलने के लिए 'राजापुर' से ही होकर गये थे। एक विचित्र प्रसंग आता है, जब श्रीराम का वनगमन हुआ है और प्रयागराज से जब चले हैं तो जमुना पार करते समय –

तेहि अवसर एक तापसु आवा।
तेज पुंज लघु बयस सुहावा॥

(रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड – ११०)

'तापस' इसलिए कहा कि वहाँ साक्षात् वाल्मीकिजी ही परम तपस्वी के रूप में आये थे –

उलटा नामु जपत जगु जाना। बालमीकि भए ब्रह्म समाना॥

(रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड - १९४)

अगर कृष्ण-भक्तों का संग मिल जाए तो मोक्ष से भी ज्यादा उपलब्धि समझो।

भक्त-आसक्ति से भव-मुक्ति

बाबाश्री के प्रातःकालीन सत्संग (१/१/२००९) से संकलित

जीव के विनाश की आठ सीढ़ियाँ में पहली है – **ध्यायतो विषयान्पुंसः** – विषयों का ध्यान, उसके बाद है – **सङ्गस्तेषूपजायते** – आसक्ति, **सङ्गात्सञ्जायते कामः** – आसक्ति से काम का उदय। आसक्ति से काम क्यों उत्पन्न होता है ? जैसे पानी में लाल रंग डाल दो तो पानी भी लाल हो जाता है, उसमे लाल रंग का गुण आ जाता है। सफेद रंग डाल दो तो सफेद रंग का गुण आ जाता है। सफेद रंग 'सतोगुण' है, लाल रंग 'रजोगुण' है। काला रंग 'तमोगुण' है, उसको पानी में डालने पर पानी काला हो जाता है। उसी तरह से जहाँ आसक्ति होती है, वहाँ निश्चित ही तदाकारता आ जाती है। इस बात को शास्त्रों में कई जगह कहा गया है। अच्छे व्यक्ति में आसक्ति हो जाएगी तो अच्छाई आ जाएगी और बुरे व्यक्ति में आसक्ति होगी तो बुराई आ जाएगी। यह बात भागवत के तीसरे स्कन्ध के तेईसवें और पच्चीसवें अध्याय में कही गयी है –

सङ्गो यः संसृतेर्हेतुरसत्सु विहितोऽधिया।
स एव साधुषु कृतो निःसङ्गत्वाय कल्पते॥

(श्रीभागवतजी ३/२३/५५)

असत् पुरुषों में यदि आसक्ति हुई तो निश्चित ही चौरासी लाख योनियों की प्राप्ति होगी तथा सत्पुरुषों के प्रति हुई आसक्ति असंगता प्रदान करती है अर्थात् तदाकारता आ जाती है। इससे कोई भी मनुष्य बच नहीं सकता है।

भक्तों में आसक्ति होने पर संसार से असंगता हो जाती है, सब अच्छाइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं। इसी बात को पुनः तीसरे स्कन्ध के पच्चीसवें अध्याय में भी कहा गया है।

प्रसङ्गमजरं पाशमात्मनः कवयो विदुः।
स एव साधुषु कृतो मोक्षद्वारमपावृतम्॥

(श्रीभागवतजी ३/२५/२०)

'आसक्ति' अजर पाश है। स्त्री-पुत्र, मकान, धन-सम्पत्ति आदि कहीं भी आसक्ति है तो वह अजर पाश है। मनुष्य की मृत्यु होने पर उसका शरीर चिता में जल जाता है किन्तु उसकी आसक्ति नहीं जलती है। वही आसक्ति यदि सत्पुरुष में हो गयी तो निश्चित ही मोक्ष का द्वार खुल जाता है। केवल स्त्री-पुरुष में ही नहीं, अपने शरीर और इन्द्रियों में भी जब तक आसक्ति है, तब तक भगवत्प्रेम नहीं होगा। इस बात को भागवत के प्रथम स्कन्ध में ही प्रकट कर दिया गया है कि जब भगवान् के प्रति प्रेम होता है तब स्त्री-पुत्र की आसक्ति तो बहुत दूर की बात है, अपने शरीर और इन्द्रियों से भी मनुष्य का मन हट जाता है।

यत्रानुरक्ताः सहसैव धीरा व्यपोह्य देहादिषु सङ्गमूढम्।

(श्रीभागवतजी १/१८/२२)

जिन भगवान् में अनुराग होने के बाद, देहादि माने देह, इन्द्रिय और स्त्री-पुत्र आदि पूरा परिवार, इनके प्रति आसक्ति की मूर्खता समाप्त हो जाती है, जरा भी नहीं रहती है। 'अपोहन' का अर्थ है दूर कर देना और व्यपोह्य का अर्थ है कि उसके संस्कार तक मिट जाते हैं कि कौन मेरा पति है, कौन मेरी पत्नी है, कौन मेरा पुत्र है, मेरा शरीर क्या है, इन्द्रियाँ क्या हैं ? 'अपोहन' माने दूर करना और 'व्यपोहन' माने अनन्तकाल के लिए संस्कार तक मिट जाते हैं, याद ही नहीं रहती है कि कौन पुत्र है, कौन पुत्री है ? वि उपसर्ग लगा दिया गया है, उसके संस्कार तक नहीं रहते हैं। जब जड़ से इन्द्रियों की, शरीर की आसक्ति चली गयी तब फिर इन्द्रियार्थ सतायेंगे, इसका कोई प्रश्न ही नहीं है। विषयों का दूसरा नाम है – इन्द्रियार्थ। जो इन्द्रियों के लिए बनाये गये हैं, उनका नाम है इन्द्रियार्थ। इन्द्रियार्थ का अर्थ है विषय। जब इन्द्रियों की आसक्ति समाप्त हो जाती है तो इन्द्रियार्थ तो अपने आप ही विदा हो जाते हैं। ऐसा साधक फिर किसी काल में भी नहीं गिर सकता है। इन्द्रियार्थों में हमारा मन इसीलिए जाता है क्योंकि इन्द्रियों में हमारी आसक्ति होती है। उसको हम समझ नहीं सकते हैं। इस बात को एक बार फिर से समझना चाहिए कि 'इन्द्रियार्थ' का मतलब है – 'विषय' और ये विषय 'इन्द्रियों' के लिए बनाये गये हैं। इसलिए विषयों में आसक्ति का मूल कारण क्या है ? वह है

इन्द्रियासक्ति। हम दूसरे को दोष देते हैं और कहते हैं कि स्त्री माया है। स्त्री माया तब है जब तुम्हारी अपनी इन्द्रियों में आसक्ति है। जब स्वयं की इन्द्रियों में तुम्हारी आसक्ति नहीं रहेगी तो स्त्री माया कैसे हो जाएगी ? तब तो स्त्री अपने शुद्ध रूप में देवीरूपा हो जाएगी। तब स्त्री के प्रति भोक्तृत्व बुद्धि ही पैदा नहीं होगी । यदि भोक्तृत्व बुद्धि उत्पन्न नहीं होती है तो सब कुछ भगवद् रूप है । दत्तात्रेयजी ने जो चौबीस गुरु बनाये थे, उनमें पतंगे को भी उन्होंने गुरु बनाया था क्योंकि अन्य कीड़े अग्नि के प्रति आकर्षित होकर उसमें नहीं जलते, जबकि पतंगा अग्नि के रूप से आकर्षित होकर उसमें जलकर मर जाता है। इसीलिए उन्होंने कहा कि स्त्री माया नहीं है, स्त्री के प्रति जो हमारी भोगबुद्धि है, वह माया है।

दत्तात्रेयजी ने कहा –

योषिद्धिरण्याभरणाम्बरादिद्रव्येषु मायारचितेषु मूढः ।
प्रलोभितात्मा ह्युपभोगबुद्ध्या पतङ्गवन्नश्यति नष्टदृष्टिः ॥

(श्रीभागवतजी ११/८/८)

योषित् अर्थात् स्त्री माया नहीं है। दत्तात्रेयजी ने यहाँ तक कह दिया कि स्वर्ण (सोना) भी माया नहीं है। जब तुम्हारी उसके प्रति उपभोग-बुद्धि होती है कि यह मेरा है, मैं इसका भोक्ता हूँ तो यह माया है । ऐसी भोग-बुद्धि होने पर ही मनुष्य पतंगे की तरह जल जाता है, उसकी बुद्धि भोग की थी, इसलिए मर गया। अग्नि में अन्य कीड़े नहीं जलते, केवल पतंगा ही जलता है। जब मनुष्य के भीतर उपभोग की बुद्धि आती है तो वह नष्ट हो जाता है । जितने भी संसार के द्रव्य हैं – रुपया-पैसा, वस्त्र जैसे रेशम, मखमल आदि ये सब माया नहीं हैं; माया केवल तुम्हारे मन में है और वह है इन भौतिक पदार्थों के प्रति उपभोग-बुद्धि, 'उपभोग-बुद्धि' माने आसक्ति, काम आदि सब आ गये । उपभोग कब होता है ? पहले आसक्ति होती है, फिर कामना उत्पन्न होती है और उसके बाद भोग होता है। 'भोग' माने पतन की सभी अवस्थायें आ गयीं। आसक्ति भी आ गयी फिर आसक्ति के बाद कामना आ गयी, फिर कामना के बाद 'क्रिया' आई तब भोग हुआ । इसलिए 'भोग' का मतलब पतन की समस्त दशायें आ गयीं। अतः भोग-बुद्धि से विनाश होता है। यदि तुम्हारी उपभोग-बुद्धि नहीं है तो विनाश नहीं होगा। जैसे – पतंगा ही उपभोग-बुद्धि के कारण आग में जलकर मरता है, अन्य कीड़े अग्नि के प्रति उपभोग बुद्धि न होने के कारण नहीं जलते हैं। उपभोग कहने से सब बातें हो गयीं । उपभोग के पहले आसक्ति होती है, आसक्ति के बाद 'काम' होता है, काम के बाद 'क्रियायें' होती हैं तब 'भोग' होता है; वे क्रियायें हमारे अन्तःकरण में लिपट जाती हैं। इसे समझो - हम जो भी क्रिया करते हैं, हर क्रिया हमारे मन में चिपक जाती है और चिपकने के बाद वह क्रिया 'संस्कार' बनकर फिर से उन्हीं क्रियाओं को करने के लिए हमको बाध्य कर देती है । जो क्रिया तुमने किया, वह तुम्हारे मन में चिपकी, 'संस्कार' बनी। संस्कार से 'वासना' उत्पन्न होती है। वासना से 'स्मृति' का उदय होता है कि लड्डू में ऐसा स्वाद होता है, उसे इस प्रकार खाया जाता है। स्मृति में राग-द्वेष रहते हैं, ये मल हैं। राग-द्वेष हमको पुनः क्रिया में प्रवृत्त कर देते हैं, जब ये पुनः क्रिया में प्रवृत्त कर देते हैं तो इनका चक्र चलता रहता है – 'कामकृत कर्म और कर्मकृत काम' यह चक्र है। वेदान्त की भाषा में इसे कहा गया है - कामकृत कर्म और कर्मकृत काम। कामना ने कर्म पैदा किया और कर्म ने कामना को पैदा किया, इसे गीता से समझो – **रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवम् ।**
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन देहिनम् ॥

(श्रीगीताजी १४/७)

रजोगुण क्या है ? यह राग है। 'राग' से तृष्णा और आसक्ति उत्पन्न होती है। आसक्ति है प्यास, भूख। विषय भोगने की जो प्यास है, यह रजोगुण है। तृष्णा और आसक्ति एक ही चीज है। 'आसक्ति' माने तृष्णा और 'तृष्णा' माने आसक्ति। उदाहरण से समझो - एक लड़की यहाँ (मान मन्दिर) पर भजन करती थी, उसकी माँ घर पर बीमार हुई तो उसने यहाँ सन्देश भेजा कि मेरी बेटी को घर भेज दो। तब उस लड़की को अपने घर जाना पड़ा। यह क्या है, यह माँ की बेटी के प्रति आसक्ति है, उससे प्यास पैदा हुई । उसने कहा कि मैं मर जाऊँगी तो बेटी को देख नहीं पाऊँगी, इसलिए उसे शीघ्र ही मेरे पास भेजो। भगवान् को देखने

की प्यास उत्पन्न नहीं हुई। कायदे से तो ऐसे समय बेटा-बेटी को मना कर देना चाहिए कि अंतिम समय कोई अपना मुख मत दिखाओ क्योंकि अब हम इस संसार से जा रहे हैं तो हमें केवल भगवान् की याद करने दो । किन्तु व्यावहारिक जगत में ऐसा नहीं होता। माँ कहती है कि मैं मरने वाली हूँ, जल्दी से मुझे बेटी का मुख दिखाओ; यह कितनी विचित्र बात है। इसी प्रकार मेरे (बाबाश्री) सामने की प्रत्यक्ष घटना है – यहाँ चिकसौली गाँव में एक ब्रजवासी रहते थे, वह वेदान्त की बहुत चर्चा किया करते थे। जब उनका अंतिम समय आया तो किसी के द्वारा उन्होंने सन्देश भिजवाया कि 'बाबा' से कह दो कि मेरे अन्तिम समय मुझे देखने के लिए आ जायें। मैंने सोचा कि ये तो मुझसे बड़ा प्रेम करते हैं क्योंकि अपने अन्तिम समय मुझे याद कर रहे हैं। मैं उनका दर्शन करने के लिए उनके घर गया तो वहाँ दूसरा ही मामला था। उनकी मुझमें कोई आसक्ति नहीं थी, उनकी थोड़ी-थोड़ी आवाज निकल रही थी, मुझे देखकर वह ब्रजवासी बोले – 'बाबा ! मैं तो जा रहा हूँ, आप मेरे छोटे बेटे का ध्यान रखना।' मैंने तो सोचा था कि ये अंतिम समय में साधु-दर्शन के लिए लालायित हो रहे हैं किन्तु वहाँ तो दूसरा ही मामला निकला। संसार में इस प्रकार का तमाशा प्रायः होता ही रहता है। मैं ऐसी घटनाओं को सुनकर हँसता हूँ और सोचता हूँ कि क्या किया जाए, यह जीव बेचारा लाचार है, इसीलिए मृत्यु के मुख में जाते समय भी अपने बेटा-बेटी और अन्य पारिवारिक लोगों को ही देखना चाहता है, भगवान् की याद नहीं करता है। जबकि अपने अन्तिम समय बेटा-बेटी से विमुख होकर उसे कहना चाहिए कि भगवान् का चित्र लाओ, मैं अब केवल भगवान् का ही दर्शन करूँगा और कुछ नहीं देखूँगा परन्तु मोहवश जीव कहता है कि मेरे बेटे को बुलाओ, नाती को बुलाओ; यह कितने दुःख की बात है। मनुष्य संसार से बिदा होता है, तब भी संसार को ही लेकर अपने साथ जाता है। यह बड़े आश्चर्य की बात है। जबकि भगवान् ने गीता में कहा है –

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥ (श्रीगीताजी ८/६)

हे कुन्तीपुत्र अर्जुन ! यह मनुष्य अन्तकाल में जिस-जिस भी भाव का स्मरण करता हुआ शरीर का त्याग करता है, उस-उसको ही प्राप्त होता है, क्योंकि वह सदा उसी भाव से भावित रहता है। इसीलिए मनुष्य अंतिम समय कहता है कि बेटा-बेटी का मुख दिखा दो क्योंकि जीवन में सदा उन्हीं के भाव से भावित रहा, तभी तो वह बेटा-बेटी की भावना से ही शरीर को छोड़ता है। ऐसा होने पर अगले जन्म में उसे उसी परिवार, नाशवान संसार की प्राप्ति होती है क्योंकि उसकी संसार के प्रति ही आसक्ति थी। इसके पहले वाले श्लोक में भगवान् ने कहा है कि शरीर छोड़ते समय मनुष्य को मेरी (श्रीभगवान् की) ही याद करना चाहिए –

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥(श्रीगीताजी ८/५)

जो पुरुष अन्तकाल में मुझको ही स्मरण करता हुआ शरीर को त्याग कर जाता है, वह मेरे साक्षात् स्वरूप को प्राप्त होता है – इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

इसीलिए अंतिम समय यदि बेटा-बेटी आयें तो उनको विदा कर देना चाहिए किन्तु यह कितने आश्चर्य की बात है कि उस समय मनुष्य कहता है कि मेरे बेटा को दिखा दो, बेटी को दिखा दो। मर रहा है, परलोक की यात्रा में जा रहा है फिर भी मोहवश बेटा-बेटी को देखना चाहता है; यह कितना बड़ा अज्ञान है। संसार के बेटा-बेटी भी ऐसे ही होते हैं, वे अंतिम समय अपने माता-पिता के पास जाकर कहते हैं – 'कहो क्या हाल है, ठीक तो हो, देखो, हम तुमसे मिलने के लिए आ गये।'

जबकि उस समय तो किसी भक्त को उस मरणधर्मा मनुष्य को फटकार लगाना चाहिए और उससे कहना चाहिए कि इस समय तू बेटा-बेटी की याद क्यों करता है, भगवान् की याद क्यों नहीं करता है ?

यह भक्त का कर्त्तव्य है कि ऐसे समय में परिवार के प्रति मोहग्रसित मनुष्य को फटकारे और उसे भगवान् की स्मृति कराये।

मनुष्य जब खाली बैठता है तब उसे काम, क्रोध, लोभ, मोहादि सभी शत्रु सताते हैं। एक कहावत है-

An empty mind is a devil's workshop.

भक्ति वश्य भगवान्

बाबाश्री द्वारा निःसृत 'श्रीभागवत-कथा' (फरवरी १९८५) से संकलित

जिस समय चक्र की अग्नि से जलते हुए दुर्वासाजी वैकुण्ठ धाम की ओर दौड़े, वे वैकुण्ठ में जाकर भगवान् के चरणों में गिरकर कहने लगे –

अजानता ते परमानुभावं
कृतं मयाघं भवतः प्रियाणाम् ।
विधेहि तस्यापचितिं विधातः
मुच्येत यन्नाम्न्युदिते नारकोऽपि ॥

(श्रीभागवतजी ९/४/६२)

'हे अच्युत ! हे अनन्त !! मैंने अपराध किया है । हे विश्वभावन !!! आप मेरी रक्षा कीजिये। हे दीनानाथ ! आपके तो नाम का ही उच्चारण करने से नारकी जीव भी मुक्त हो जाता है।' जब दुर्वासा जी ने इस प्रकार भगवान् से रक्षा करने की प्रार्थना की और उनके नाम की महिमा बतायी तो भगवान् ने कहा – 'हे ब्राह्मण देवता ! (भगवान् तो ब्राह्मणों से बड़ी नम्रता से बोलते हैं)

अहं भक्तपराधीनो हि अस्वतंत्र इव द्विज ।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः ॥

(श्रीभागवतजी ९/४/६३)

मैं भक्तों के बन्धन में हूँ, मैं बिल्कुल भी स्वतंत्र नहीं हूँ। भक्तों ने मेरे हृदय को जकड़ रखा है, वे मुझे प्यार करते हैं और मैं उन्हें।

नाहं आत्मानमाशासे मद्भक्तैः साधुभिर्विना ।
श्रियं चात्यन्तिकीं ब्रह्मन् येषां गतिः अहं परा ॥

(श्रीभागवतजी ९/४/६४)

अपने साधु स्वभाव भक्तों को छोड़कर मैं न तो अपने आपको चाहता हूँ और न ही लक्ष्मी जी को।

ये दारागारपुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम् ।
हित्वा मां शरणं याताः कथं तान् त्यक्तुमुत्सहे ॥

(श्रीभागवतजी ९/४/६५)

जो भक्त अपनी स्त्री, मकान, पुत्र, प्राण, धन आदि को छोड़कर मेरी शरण में आ गये हैं, मैं उनको कैसे छोड़ सकता हूँ ?'

प्रभु के लिए छोड़ना सीखो। प्रभु के लिए तुम एक कौड़ी भी छोड़ोगे तो वे ऋणी हो जायेंगे। किन्तु प्रभु के लिए छोड़ो, दुनिया को दिखाने के लिए नहीं। कुछ लोग चार पैसे मंदिर में चढ़ाते हैं तो देखते हैं कि कोई देख रहा है या नहीं। यह छोड़ना तो दुनिया के लिए छोड़ना हुआ। प्रभु के लिए त्याग करो। पाँच सौ रुपया दान मत करो, पाँच रुपये दान करो किन्तु उसे कोई न जाने, केवल प्रभु जाने। पाँच सौ रुपये यदि तुमने दूसरों को दिखाने के लिए दान दिए तो वह वेश्या की तरह है। वेश्या की तरह दुनिया को प्रसन्न करने के लिए कोई काम मत करो। भगवान् कहते हैं कि मेरे लिए छोड़ो। ऐसे भक्त मुझे इस तरह वश में कर लेते हैं जैसे अच्छी सती स्त्रियाँ अच्छे पति को वश में कर लेती हैं। साधु मेरे हृदय में रहते हैं, मैं साधुओं का हृदय हूँ। वे मेरे अतिरिक्त और कुछ नहीं जानते तथा मैं भी उनके अतिरिक्त और कुछ नहीं जानता। दुर्वासा जी, मैं आपको एक उपाय बता सकता हूँ, जिनका अपराध करने से आपको इस संकट का सामना करना पड़ रहा है, आप उन्हीं अम्बरीष जी की शरण में जाइए क्योंकि –

साधुषु प्रहितं तेजः प्रहर्तुः कुरुतेऽशिवम् ।

(श्रीभागवतजी ९/४/६९)

वैष्णव साधुओं के विरुद्ध यदि कोई अपनी ताकत का प्रयोग करता है तो उससे उसकी सारी ताकत जल जाती है। ताकत प्रयोग करने वाले को स्वयं उसका विपरीत फल भोगना पड़ता है। इसलिए साधु भक्तों से कभी अटकना नहीं चाहिए।

तपो विद्या च विप्राणां निःश्रेयसकरे उभे ।
ते एव दुर्विनीतस्य कल्पेते कर्तुरन्यथा ॥

(श्रीभागवतजी ९/४/७०)

तपस्या और विद्या दोनों ही ब्राह्मणों का कल्याण करने वाली हैं किन्तु उद्दण्ड ब्राह्मण को ये दोनों ही विपरीत फल देती हैं ।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि इस प्रकार भगवान् के आदेश देने पर सुदर्शन चक्र की ज्वाला से तपाये गये दुर्वासाजी

अम्बरीषजी के पास आये और उनके चरणों को पकड़ लिया। उनकी यह चेष्टा देखकर अम्बरीष जी लज्जा से काँप गये और और सोचने लगे कि ये तो ऋषि हैं, ब्राह्मण हैं, ये मेरे चरणों में क्यों पड़ रहे हैं ?

दुर्वासाजी ने कहा – 'मैं सुदर्शन चक्र की ज्वाला से जल रहा हूँ। इससे बचने के लिए भगवान् ने मुझे आपके पास भेजा है, कृपा करके आप मेरी रक्षा कीजिये।'

अम्बरीष जी भगवान् के चक्र की स्तुति करने लगे – 'प्रभो ! आप अग्नि, भगवान् सूर्य, चन्द्रमा, जल, पृथ्वी, आकाश आदि हैं; मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आपका तेज त्रिलोकी की रक्षा के लिए है। सूर्य आदि तो आपके अंश हैं। आप दैत्य-दानवों की सेना में घुसकर काट-काटकर उनका वध कर देते हैं। यदि मैंने कुछ भी दान किया है, यज्ञ किया है अथवा अपने धर्म का सुन्दर रीति से अनुष्ठान किया है तो मैं यही चाहता हूँ कि महर्षि दुर्वासाजी का संकट मिट जाए।' इस तरह अम्बरीषजी ने अपनी भक्ति को दाँव पर लगा दिया।

शुकदेवजी कहते हैं कि जब राजा अम्बरीष ने सुदर्शन चक्र की इस प्रकार स्तुति की और अपनी भक्ति को भी दाँव पर लगा दिया तब सुदर्शन चक्र शान्त हो गये। चक्र के शान्त होते ही दुर्वासाजी का सारा कष्ट दूर हो गया। दुर्वासाजी एक वर्ष तक चक्र की अग्नि से जलते हुए दौड़ते रहे थे, अब जाकर उन्होंने राहत की साँस ली।

दुर्वासाजी ने कहा –

अहो अनन्तदासानां महत्त्वं दृष्टमद्य मे।
कृतागसोऽपि यद् राजन् मंगलानि समीहसे॥

(श्रीभागवतजी ९/५/१४)

'अरे, आज मैंने भगवान् के भक्तों का महत्व देखा। हे राजन् ! मैंने आपका अपराध किया फिर भी आप मेरी मंगल कामना कर रहे हैं।' इसे कहते हैं भगवद्भक्त। जो बदला लेता है, वह भक्त नहीं है। यह नपी-तुली बात है। किसी ने हमसे कहा - उल्लू और बदले में हम उसको गधा कहें तो यह भक्ति नहीं है। चाहे कोई कितना भी पढ़ा-लिखा है, विद्वान् है, ब्राह्मण है, क्षत्रिय है यदि वह अपने प्रति किये अपकार का बदला लेता है तो भक्त नहीं है। जो अनन्त भगवान् का दास होता है, उसका यही लक्षण है कि वह अपना अनिष्ट करने वाले का भी हित ही चाहता है। बदला लेना धोखा है, यह भक्ति नहीं है।

यन्नामश्रुतिमात्रेण पुमान् भवति निर्मलः।
तस्य तीर्थपदः किं वा दासानामवशिष्यते॥

(श्रीभागवतजी ९/५/१६)

दुर्वासाजी कहते हैं कि जिन प्रभु का नाम सुनने मात्र से ही मनुष्य निर्मल हो जाता है तो फिर उनके दास में ऐसा गुण क्यों नहीं होगा ? भगवान् का नाम सुनने से ही मनुष्य निर्मल हो जाता है तभी तो गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है –

राम एक तापस तिय तारी।
नाम कोटि खल कुमति सुधारी॥

(श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड -२४)

नाम की ही महिमा है कि इसके प्रभाव से अब तक करोड़ों जीव सुधर गये और अभी भी सुधर रहे हैं। जो लोग नाम जप, नाम-कीर्तन करते हैं, वे हिंसा नहीं करते हैं।

जब से दुर्वासा जी भागे थे तब से अब तक एक वर्ष का समय हो चुका था। एक वर्ष तक राजा अम्बरीष ने अन्न ग्रहण नहीं किया था। अब उन्होंने दुर्वासा जी के चरण पकड़ लिए और उन्हें प्रसन्न करके भोजन कराया। भोजन करके जब वे तृप्त हो गये तो उन्होंने अम्बरीष जी से कहा – 'राजन् ! अब आप भी भोजन कीजिये।'

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – **"द्विजोपयोगातिपवित्रमाहरत्"**

अम्बरीषजी ने दुर्वासाजी के भोजन से बचे हुए अन्न अर्थात उनके जूठन को खाया। भागवत के टीकाकार श्रीराघवाचार्यजी लिखते हैं –**द्विजभुक्तावशेषणाद्** - दुर्वासाजी के खाए हुए भोजन से बचे हुए अन्न अर्थात् उनकी जूठन को अम्बरीष जी ने खाया।

बहुत से लोग संतों-भक्तों की जूठन से घबराते हैं और कहते हैं कि किसी का जूठन नहीं खाना चाहिए। किन्तु नहीं, साधु-ब्राह्मण की जूठन खाने का विधान है। श्रीजीव गोस्वामीजी लिखते हैं –

"भगवत्प्रधानानामुपयोगेनश्रीभगवतः प्रीत्यतिशयात्"

भक्तों की जूठन खाने से भक्ति आती है। श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि महाराज अम्बरीष के इस पवित्र आख्यान का जो संकीर्तन और स्मरण करता है, वह भगवान् का भक्त हो जाता है।

'स्वभाव' तभी बदलता है जब किसी निष्किंचन महापुरुष की शरणागति होती है।

'गौसेवा' से सर्वकाम सुलभ

बाबाश्री के सायंकालीन-सत्संग (२३/९/२००९) से संकलित

'श्रीस्वभूरामदेवजी' निम्बार्क सम्प्रदाय के प्रसिद्ध आचार्य श्रीहरिव्यासदेवजी के शिष्य थे। 'श्रीहरिव्यासदेवजी' ऐसे प्रतापी आचार्य थे, जिन्होंने अपने भजन के प्रताप से देवी को गुरु-दीक्षा दी थी, उनके बारे में गोस्वामी नाभाजी ने भक्तमाल में लिखा –

"हरिव्यास बल भजन के देवी को कंठी दई।"

श्रीस्वभूरामजी का जन्म भी ऐसे विचित्र ढंग से हुआ था, जिसको तर्क-बुद्धि से नहीं समझा जा सकता, किन्तु भक्तमाल की कथा तार्किकों के लिए है भी नहीं, यह तो भक्तों के लिए है। स्वभूरामदेवजी के पिता का नाम 'कृष्णदत्त' था और माता का नाम 'राधादेवी' था। ऐसा जोड़ा भी बड़ा विचित्र होता है कि माँ का नाम 'राधा' और पिता का नाम 'कृष्ण'; इन दंपत्ति के कोई सन्तान नहीं थी, पुत्र-प्राप्ति के लिए इन्होंने बहुत से अनुष्ठान, यज्ञ, दान आदि किये। जो कोई भी इन्हें सन्तान-प्राप्ति के लिए कोई साधन बताता, ये उसी को करते थे। अन्त में अनेक उपाय करने पर भी जब सन्तान की प्राप्ति नहीं हुई तो राधादेवी और कृष्णदत्त निराश हो गये कि हमें तो पुत्र मिलना ही नहीं है। जैसा कि सन्तों ने कहा है – "हारे को हरिनाम"। तो इन्होंने भी सब साधनों से निराश होकर 'भगवन्नाम' का आश्रय लिया कि अब कोई साधन नहीं है, केवल 'भगवन्नाम' ही सहारा है। सूरदासजी ने लिखा है –

अपबल तपबल और बाहुबल, चौथो बल है दाम।
सूर किसोर कृपा ते सब बल, हारे को हरिनाम॥

जब कोई सहारा नहीं रहता, तब एक ही सहारा सच्चा है और वह है 'हरिनाम'। भगवन्नाम-कीर्तन जहाँ होता है, वहाँ आने-जाने वाले लोगों में संत-भक्त ही होते हैं। राधादेवी और कृष्णदत्त अपने घर पर नाम-कीर्तन कर रहे थे, तो एक दिन वहाँ एक संतजी आये और कृष्णदत्त को उदास देखकर उसका कारण पूछा तो उन्होंने कहा कि हमारे कोई सन्तान नहीं है। हमने सन्तान-प्राप्ति की आशा से बहुत प्रयत्न किये किन्तु सफलता नहीं मिली।

उन संतजी ने कहा – 'निराश मत होइए। भगवान् के भक्तों में बड़ी सामर्थ्य होती है। हरिव्यासदेवजी नामक बड़े ही सिद्ध संत हैं, क्या आप कभी उनके पास गये ? एक बार आपको उनके पास अवश्य ही जाना चाहिए।' इन संतजी की प्रेरणा से ये ब्राह्मण दम्पति 'हरिव्यासदेवाचार्यजी' की शरण में गये, उन्हें प्रणाम किया और उनसे अपना दुःख भी निवेदन किया। इनकी बात सुनकर हरिव्यासदेवजी ने कहा कि दुनिया में कोई भी काम असम्भव नहीं है। इसलिए निराश मत होओ, तुम गौसेवा करो। आचार्यजी ने बताया कि भगवान् राम के पूर्वज राजा दिलीप के भी कोई सन्तान नहीं थी, उनको कामधेनु गाय का शाप था, जिसको कोई भी टाल नहीं सकता था, यहाँ तक कि ब्रह्माजी भी उस शाप को नहीं टाल सकते थे। गुरु वसिष्ठ की आज्ञा से दिलीप ने गौसेवा की। बड़े ही विस्तार के साथ हरिव्यासदेवजी ने दम्पति को राजा दिलीप की गौसेवा की कथा सुनायी।

दिलीप की गौसेवा का जो चमत्कार हुआ, उसी का फल यह 'बरसाना धाम' भी है। दिलीप के चार पुत्र हुए, सबसे छोटे पुत्र का नाम था – धर्म, उसने राज्य नहीं ग्रहण किया। उसने कहा कि मैं तो गौसेवा ही करूँगा, जैसे मेरे पिताजी ने की थी। आगे चलकर उनके वंश में भगवान् राम के प्रकट होने पर उनकी आज्ञा से उनके सबसे छोटे भाई शत्रुघ्नजी मथुरा आये तो उस समय धर्म के वंश में अभयकर्णजी थे, ये भी गौसेवा किया करते थे, इन्होंने कहा कि मेरे पिता और प्रपितामह (परबाबा) ने गौसेवा की थी, इसलिए मैं भी राज्य नहीं ग्रहण करूँगा, गौसेवा करूँगा। गौसेवा करने के लिए अभयकर्णजी मथुरा आ गये, उन्होंने सुना था कि ब्रज बड़ा ही सुन्दर देश है। वहाँ यमुनाजी का मीठा जल तथा बड़े ही सुन्दर वन-उपवन हैं, उन्हीं के वंश में आगे चलकर रशंगजी हुए, वे एक बार गौसेवा करते हुए मथुरा से बरसाना की ओर चले, उन्हीं ने 'बरसाना' बसाया था। रशंगजी के ही वंश में राधारानी के पिता वृषभानुजी उत्पन्न हुए। यह गौसेवा का बहुत विस्तृत इतिहास है, जिसको लोग प्रायः नहीं जानते हैं। मेरा ऐसा विचार है कि रशंगजी ने गौसेवा के लिए

'बरसाना' को बसाया था और यह बात हमें (बाबाश्री को) बहुत खटकती थी कि गौसेवा के लिए सूर्यवंशी राजा बरसाना में आये और वर्तमानकाल में यहाँ गौसेवा नहीं होती है। हमारे आग्रह से सागरियाजी ने ऊँचा गाँव के रास्ते में एक गौशाला खोली थी परन्तु हम जैसा चाहते थे, उस गौशाला का वैसा विस्तार नहीं हो सका । हमारी सागरियाजी से इस विषय में बात भी हुई थी कि बरसाना गौसेवा का केन्द्र है, इसलिए यहाँ गोशाला होना आवश्यक है । अचानक ही यहाँ 'माताजी गौशाला' की स्थापना करवाकर श्रीजी ने हमारी यह इच्छा पूरी कर दी। यह केवल ब्रज की ही नहीं अपितु भारतवर्ष की एक आदर्श गौशाला है।

अस्तु, जब हरिव्यासदेवजी ने कृष्णदत्तजी से कहा – "तुम निराश मत हो और सच्ची निष्ठा के साथ गौसेवा करो ।" गाय पशु नहीं है, उसे पशु नहीं समझना चाहिए। ऐसा नहीं सोचना चाहिए कि गौसेवा का चमत्कार राजा दिलीप के समय ही हुआ था और अब ऐसा नहीं हो सकता है अथवा श्रीकृष्ण के समय गौसेवा का चमत्कार हुआ था और अब नहीं हो सकता है । भावना यदि ठीक रहेगी तो अब भी चमत्कार होगा। हमें (बाबाश्री को) इस बात पर पूर्ण विश्वास है कि महावन में गुरु शरणानन्दजी के रमणरेती के आश्रम की जो प्रगति हुई, वह गौसेवा का ही चमत्कार है।

अतः हरिव्यासदेवाचार्यजी की आज्ञा से कृष्ण दत्त और राधा देवी गौसेवा करने लगे, उन्होंने आचार्यजी की बतायी हुई आदर्श विधि से गौसेवा की। 'गौसेवा' को ही धर्म, जप, भजन और गोविन्द-सेवा मान लेना चाहिए । एक दिन कृष्णदत्तजी गौसेवा कर रहे थे तो ब्रह्ममुहूर्त में अचानक ही खिरक में इनको प्रकाश दिखाई पड़ा । उन्होंने आश्चर्य के साथ सोचा कि यह प्रकाश कहाँ से आ रहा है । जिधर प्रकाश दिखाई दिया, कृष्णदत्तजी कौतुहलवश दौड़कर उधर ही गये। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि गायों के बीच में एक नवजात शिशु पड़ा हुआ था और उस शिशु के शरीर से प्रकाश निकल रहा था । कृष्णदत्तजी ने तुरन्त ही अपनी स्त्री को पुकारा – 'अरी राधा ! इधर आओ। देखो, यहाँ एक शिशु पड़ा हुआ है ।' अपने पति की आवाज सुनकर राधा देवी दौड़कर उनके पास गयीं। नवजात शिशु को देखते ही वात्सल्य के कारण राधा देवी के स्तनों से दूध निकलने लगा। जबकि स्तनों से दूध तो उसी माता के निकलता है, जिसने गर्भ धारण किया हो, अतः यह एक दूसरा चमत्कार हुआ। राधा देवी ने उस नवजात शिशु को गोद में उठा लिया और स्तनपान कराया। ये माता के गर्भ से पैदा नहीं हुए थे, इसलिए ज्योतिषियों ने इनका नाम रखा – 'स्वभू' अर्थात् स्वतः पैदा होने वाला। आगे चलकर इनका नाम हो गया – 'स्वभूराम'। बालक स्वभूराम बाल्यावस्था से ही अलौकिक प्रवृत्ति के थे । किसी के मुख से 'भगवन्नाम' सुनते ही आनन्द से पुलकित हो जाते थे। स्वभूरामजी जब आठ वर्ष के हुए तो इनके माता-पिता मथुरा आये, जहाँ हरिव्यासदेवाचार्यजी रहते थे । आचार्यजी को देखते ही बालक स्वभूराम उनके चरणों से लिपट गये और उनको छोड़कर माता-पिता के साथ जाने को तैयार नहीं हुए । हरिव्यासदेवजी ने कहा – 'बेटा ! अभी तुम जाओ क्योंकि तुम अपने माता-पिता के इकलौते पुत्र हो ।' आचार्यजी ने उनको गुरु-दीक्षा दी और माता-पिता के साथ ही जाने की भी आज्ञा दी। स्वभूरामजी ने जब गुरु- आज्ञा सुनी तो वह अपने माता-पिता के साथ चले गये परन्तु घर पर उनका मन नहीं लगा, अतः ये हरिव्यासदेवजी के पास पुनः आ गये। आचार्यजी ने बालक स्वभूराम से कहा – 'माता-पिता की आज्ञा के बिना मैं तुमको अपने पास नहीं रख सकता क्योंकि तुम उनके तप से प्रकट हुए हो ।' गुरुदेव की आज्ञा से बालक स्वभूराम फिर से अपने माता-पिता के पास गये और उनसे गुरुचरणों में रहने की आज्ञा माँगी। माता-पिता ने अपने पुत्र से कहा – 'बेटा ! तुम्हीं तो हमारे प्राणाधार हो, हम तुमको कैसे छोड़ सकते हैं, हम तुमको गुरुदेव के पास रहने की आज्ञा कैसे दे सकते हैं ?' स्वभूरामजी ने अपने माता-पिता से कहा कि आप मुझे गुरुजी के पास रहने की आज्ञा इसलिए नहीं देते हैं क्योंकि मैं आपका इकलौता पुत्र हूँ। यदि मेरे अन्य भाई पैदा हो जाएँ तब क्या आप मुझे गुरुचरणों में रहने की आज्ञा दे देंगे ?

माता-पिता बोले – 'हाँ, अन्य सन्तान होने पर हम तुम्हें गुरुजी के पास रहने की आज्ञा दे देंगे ...।'

'कॉन्वेंट स्कूल' से 'भारतीय शिक्षा-संस्कृति' का ह्रास

(राजीव दीक्षितजी के प्रवचन से संकलित)

अंग्रेजों ने अपने शासनकाल के दौरान भारतीय शिक्षा व संस्कृति का किस प्रकार नाश किया, उसके बारे में गवर्नर जनरल मैकाले का एक पत्र प्राप्त होता है, जिसमें उसने अपने पिता को लिखा है कि मैंने यहाँ एक ऐसी व्यवस्था स्थापित कर दी है, जिससे भारत की न्याय-पद्धति का नाश हो जाएगा और जब भारतीय न्याय-पद्धति का नाश हो जाएगा तो 'भारतीय समाज' टूट जायेगा। लन्दन में एक पुस्तकालय है, उसका नाम है – 'इण्डिया ऑफिस लाइब्रेरी', वहाँ से मैंने मैकाले का यह पत्र निकलवाया। 'इण्डिया ऑफिस लाइब्रेरी' से मैं भारत से सम्बन्धित पचास हजार दस्तावेज निकालकर लाया, उसमें एक मैकाले का पत्र है, जो उसने अपने पिता को लिखा था, उसमें मैकाले ने लिखा है कि यदि 'भारतीय-समाज' को बर्बाद करना है तो भारतीय न्याय-पद्धति को नष्ट कर देना चाहिए तो इसके लिए उसने नये-नये तरह के कानून बना दिए। दूसरी बात मैकाले कहता था कि यदि भारतीय-समाज का विनाश करना है तो यहाँ की शिक्षा-पद्धति का नाश करो। मैकाले स्वयं इस बात को मानता था कि भारत की शिक्षा-पद्धति विश्व की सर्वाधिक विकसित और सर्वश्रेष्ठ पद्धति है। प्राचीन भारत में शिक्षा के लिए गुरुकुल चलाये जाते थे, गुरुकुलों में विद्यार्थी पढ़ते थे; इन गुरुकुलों में बीस से पच्चीस वर्ष तक विद्यार्थी ब्रह्मचर्य-व्रत धारण करके विद्याध्ययन किया करते थे, यहाँ उनको भारतीय-संस्कार प्राप्त होते थे, वे संस्कार लेकर 'विद्यार्थी' समाज में जाते थे, इन्हीं संस्कारों से संस्कृति बनती थी। वही संस्कृति 'भारतीय-संस्कृति' कहलाती थी। ऋषि-मुनि, ज्ञानी सन्तजन इन गुरुकुलों को चलाया करते थे। समस्त गुरुकुलों में वेदों, उपनिषदों, पुराणों का अध्ययन कराया जाता था। जो भारतीय ज्ञान है, जो भारतीय मनीषा है, उन सबका अध्ययन इन गुरुकुलों में संस्कृत के माध्यम से कराया जाता था। मैकाले ने इन गुरुकुलों का नाश करने के लिए एक कानून बनाया, इस कानून के माध्यम से उसने सम्पूर्ण भारत में चलने वाले गुरुकुलों को अवैध (गैर-कानूनी) घोषित कर दिया, उसने घोषणा कर दी कि संस्कृत के माध्यम से भारत में जो भी गुरुकुल चलेगा, उसे 'अंग्रेज सरकार' मान्यता नहीं देगी, उसने कहा कि अंग्रेजी भाषा के माध्यम से जो कॉन्वेंट स्कूल चलेंगे, उनको सरकार मान्यता प्रदान करेगी। इसके लिए विधिवत् रूप से उसने एक कानून बनाया। उस कानून का नाम था – 'इण्डियन एजूकेशन ऐक्ट' और यह कानून लागू हुआ सन् १८५८ में। इतने वर्षों पुराना जो कानून भारत में अंग्रेजों द्वारा लागू किया गया, वह आज तक चल रहा है। इस कानून के माध्यम से मैकाले ने संस्कृत के माध्यम से चलने वाले गुरुकुलों को नष्ट कर दिया, कानून बनाकर उनको बन्द करा दिया, उन गुरुकुलों में जो आचार्य होते थे, उनको अंग्रेज सरकार द्वारा मार-पीटकर जेल में बन्द कर दिया गया। जो विद्यार्थी उनमें अध्ययन के लिए जाते थे, उनको रोक दिया जाता था, वे गुरुकुल में अध्ययन न कर पायें, इसके लिए समस्या खड़ी की जाती थीं। दूसरी ओर अंग्रेजों ने 'कॉन्वेंट स्कूल' चालू करवा दिए, उनमें अंग्रेजी भाषा के माध्यम से शिक्षा दी जाती थी। एक दिन मैकाले ने अपने पिता को एक पत्र लिखा, उस पत्र में उसने अपने पिता को बताया कि मैंने भारत में एक ऐसी शिक्षा-पद्धति उत्पन्न कर दी है, जिसमें यदि भारतीय विद्यार्थी पढ़ेंगे और पढ़कर बाहर निकलेंगे तो वे शरीर से तो भारतीय होंगे किन्तु दिमाग से अंग्रेज हो जायेंगे और फिर जब वे ऐसे हो जायेंगे तो सारे काम हम अंग्रेजों के हिसाब से करेंगे और वे विद्यार्थी जब कॉन्वेंट स्कूलों से पढ़कर निकलेंगे तो सबसे ज्यादा गाली 'भारतीय संस्कृति' को देंगे, सबसे ज्यादा गाली अपने माँ-बाप को देंगे, कैसे ? उन्हें मम्मी और डैड कहकर। 'डैड' का अर्थ होता है - मरा हुआ। 'मम्मी' माने होता है 'शव'। मिस्र (ईजिप्ट) एक देश है, वहाँ पर मरे हुए मनुष्य के शव को ममीज कहा जाता है। इसलिए अब हमारी माँ हो गयी मम्मी और पिता हो गये डैड, ये शब्द आये कहाँ से ? इन्हें मैकाले ने हमारे दिमाग में डाल दिया। मैं कहता हूँ कि अब मैकाले तो मर गया, उसका बाप भी मर गया और जिन अंग्रेजों ने भारत पर २०० साल तक शासन किया, वे सब भी मर गये। किन्तु मैकाले और उसके खानदान वालों की आत्मा हम सब में प्रवेश कर गयी। कैसे प्रवेश कर गयी ? मैं आपको इतिहास की यह सच्चाई बताता हूँ कि जिस ज़माने में मैकाले ने भारत

में सबसे पहला कॉन्वेंट स्कूल कलकत्ता में खोला था, वह चला नहीं, बन्द हो गया। क्यों बन्द हो गया क्योंकि कोई भी भारतीय माँ-बाप अपने बच्चे को कॉन्वेंट में पढ़ने के लिए नहीं भेजता था। अंग्रेज अपनी पूरी ताकत लगाकर भी इस देश में कॉन्वेंट चला नहीं पाए लेकिन अंग्रेजों के जाने के बाद अब गली-गली में, गाँव-गाँव में कॉन्वेंट स्कूल चल रहे हैं और अब इस देश में ऐसे मम्मी-डैडी पैदा हो गये हैं जो अपने बच्चे के जन्म के पहले ही कॉन्वेंट स्कूल में रजिस्ट्रेशन करा आते हैं। वे कहते हैं कि यदि पहले से रजिस्ट्रेशन नहीं कराया तो बच्चे को कॉन्वेंट स्कूल में प्रवेश नहीं मिल पायेगा। इन लोगों को अपने बच्चे को कॉन्वेंट में पढ़ाना बहुत जरूरी लगता है और मैं इन लोगों से पूछता हूँ कि अपने बच्चे को कॉन्वेंट स्कूल में क्यों पढ़ाना चाहते हैं तो वे कहते हैं कि हमारा बच्चा यदि कॉन्वेंट स्कूल में पढ़ेगा तो वह बहुत स्मार्ट हो जायेगा। ऐसे लोगों से मैं पलटकर पूछता हूँ कि स्मार्टनेस क्या होती है तो दिल्ली, बम्बई के लोग प्रायः कहते हैं कि हमारा बच्चा जब कॉन्वेंट में पढ़ेगा तो वह टाई लगाएगा, जूते-मोज़े पहनेगा। अंग्रेजों के देश में 'टाई' इसलिए लगाई जाती है क्योंकि वहाँ सर्दी बहुत पड़ती है। वहाँ एक साल में छः महीने भयंकर बर्फ पड़ती है। कभी-कभी तो ऐसा होता है कि छः-सात महीने सूर्यदेव के दर्शन ही नहीं होते और वहाँ की जलवायु ऐसी है कि आज यदि सूर्य निकला तो जरूरी नहीं कि कल, परसों भी निकलेगा। भारत में ऐसा नहीं है, यहाँ तो आज यदि सूर्य निकला है तो कल भी निकलेगा, परसों भी निकलेगा, तीन महीने बाद और एक साल बाद भी निकलेगा। यूरोप में सर्दी बहुत पड़ती है और जिन देशों में ठण्ड बहुत अधिक होती है, वहाँ के लोगों को जुकाम बहुत होता है। जुकाम के कारण नाक से पानी निकलता रहता है तो उसको पोंछने के लिए बार-बार जेब से रूमाल निकालना पड़ता है। इसलिए उन लोगों ने ऐसी तरकीब निकाली कि एक रूमाल गले में लटका दिया जाए जो बार-बार नाक पोंछने के काम आएगा। अंग्रेजी में tie (टाई) का मतलब होता है – गले के चारों ओर लटकाया गया कोई कपड़ा, वह नाक पोंछने के काम आता है; ऐसा इसलिए करते हैं क्योंकि वहाँ सर्दी बहुत पड़ती है। हमारे देश में तो एक साल में नौ महीने तक गर्मी पड़ती है। गुजरात आदि प्रदेशों में तो बारह महीने गर्मी पड़ती है। अतः यूरोप के देशों में तो लोग टाई इसलिए लगाते हैं क्योंकि अधिक ठण्ड के कारण उन्हें इसकी आवश्यकता होती है परन्तु हम लोग भारत में अपने बच्चों के गले में टाई क्यों लगाते हैं ? मर गये अंग्रेज और मर गया मैकाले किन्तु उसकी आत्मा का वास हम लोगों के शरीर में हो गया है। जिसको देखो, वही अपने बच्चे को कॉन्वेंट स्कूल में पढ़ा रहा है, अंग्रेजियत की ओर धकेल रहा है; यह बड़े शर्म की बात है और हम लोगों को इससे सावधान हो जाना चाहिए। आप लोगों को पता होना चाहिए कि कॉन्वेंट का मतलब क्या होता है ? यूरोप में हजारों वर्षों तक यह परम्परा रही है कि जन्म के बाद बच्चों को लावारिस छोड़ दिया जाता है। आज भी अमेरिका और यूरोप में आधे से अधिक बच्चे लावारिस के रूप में बड़े होते हैं और यह परम्परा आज से सौ-डेढ़ सौ साल पहले तक तो बहुत भयंकर थी, उस समय बच्चे के जन्म के बाद उसे चर्च अथवा अनाथालय के सामने छोड़ दिया जाता था, वहाँ बच्चे का पालन किया जाता था। इस तरह यूरोप में जो लावारिस बच्चे होते थे, उनके पालन-पोषण और शिक्षा का काम जिस स्थान पर किया जाता था, उसको 'कॉन्वेंट' कहते हैं। 'कॉन्वेंट' का मतलब होता है लावारिस बच्चों के पालन-पोषण और शिक्षा का स्थान। जिन बच्चों के माँ-बाप नहीं हैं, दादा-दादी अथवा कोई कुटुम्बीजन नहीं है, उन बच्चों को पढ़ाने के लिए यूरोप में जो स्कूल चलाये गये, उनको कॉन्वेंट स्कूल कहते हैं। अब भारत में हम अपने बच्चों को कॉन्वेंट स्कूल में पढ़ने के लिए क्यों भेज रहे हैं ? यहाँ तो माँ भी है और बाप भी है किन्तु हम लोग इतने मूर्ख हो गये हैं कि माँ-बाप के रहते हुए भी बच्चे को लावारिस बनाने के लिए कॉन्वेंट स्कूल में भेज देते हैं। एक व्यक्ति ने कहा कि यदि हम अपने बच्चे को पढ़ने के लिए 'कॉन्वेंट स्कूल' में नहीं भेजेंगे तो हमारा बच्चा अंग्रेजी में पीछे हो जायेगा। मैंने उनसे पूछा कि क्या आपको पता है कि दुनिया के कितने देशों में अंग्रेजी का प्रयोग किया जाता है। वह व्यक्ति बोले कि अंग्रेजी तो अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है, मैंने उनसे कहा कि आपको सही बात की जानकारी नहीं है। दुनिया में इस समय २०० देश हैं, जो संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य हैं। उन २०० देशों में मात्र १२ देशों में अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जाता है। बाकी १८८ देशों में उन देशों की मातृ भाषा का प्रयोग किया जाता है। जब २०० देशों में मात्र १२ देशों में अंग्रेजी का प्रयोग किया जाता है तो अंग्रेजी अन्तर्राष्ट्रीय भाषा हो ही नहीं सकती है।

असंगता से समता

बाबाश्री के श्रीमद्भगवद्गीता-सत्संग (२/२/२०१२) से संकलित

श्लोक – ४८

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥

(श्रीगीताजी २/४८)

सभी कर्म 'योग' में स्थित होकर करना चाहिये, आसक्ति के कारण योग नष्ट हो जाता है।

श्रीभगवान् ने कहा – हे धनञ्जय! आसक्ति छोड़ने के बाद सभी कर्म 'योग' में स्थित होंगे। अब प्रश्न हुआ कि योग क्या है? सिद्धि और असिद्धि में समान होने (समत्व) को 'योग' कहते हैं। कोई काम अपने मन के अनुसार सिद्ध हुआ तथा कोई काम अपने मन के अनुसार सिद्ध नहीं हुआ, दोनों में जो समान है, न हर्ष है, न शोक है तो 'योग' हो गया। काम वही है – युद्ध करना, लड़ना-भिड़ना, सफलता-असफलता मिलना; काम तो वही रहते हैं लेकिन उसके परिणाम का असर मन पर पड़ता है, उससे 'योग' की स्थिति नष्ट हो जाती है। काम सिद्ध हो गया, उसमें सुखी हो गए और यदि काम असिद्ध हुआ, उसमें दुःखी हो गए तो यह स्थिति 'योग' को नष्ट कर देती है। भगवान् ने कहा है कि अगर योग में स्थित हो गए तो ब्रह्म में स्थित हो जाओगे।

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम्।
स्थिरबुद्धिरसम्मूढो ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थितः॥

(श्रीगीताजी ५/२०)

जो मनुष्य प्रिय वस्तु को प्राप्त करके प्रसन्न नहीं होता तथा अप्रिय को प्राप्त करके उद्विग्न नहीं होता, वही स्थिरबुद्धि है और वही ब्रह्मवेत्ता है अर्थात् ब्रह्म में स्थित है। स्थिर बुद्धि वाला ही स्थितप्रज्ञ बन सकता है। योगी वही है जो योग में स्थित है। योग का मतलब किसी क्रिया से नहीं है। योग का मतलब लोग यही समझते हैं – हठयोग, आसन, प्राणायाम आदि क्रियाएँ। भगवान् गीता में इससे आगे योग के बारे में बता रहे हैं, जैसा कि पातंजलि योगसूत्र में कहा गया है – **"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।"** योग मन से होता है, शरीर की क्रियाओं द्वारा योग नहीं होता है। यदि तुम बड़ा भारी प्राणायाम और आसन करने वाले हो लेकिन तुम्हारा मन स्थिर नहीं है तो तुम योगी नहीं हो। योगी तो वही है जिसका मन दुःखों में घबराता नहीं है और सुखों के लिए ललचाता नहीं है। उद्विग्न होने से क्रोध और भय पैदा होंगे तथा स्पृहा होने से राग पैदा होगा। इन तीनों का नाश तभी होता है जब मन में दुःखों के कारण उद्वेग न पैदा हो तथा सुखों की स्पृहा उत्पन्न न हो। जो दुःख में घबराता है, उसके अंदर क्रोध भी रहेगा और भय भी रहेगा तथा जो सुख की इच्छा करता है, उसके मन में आसक्ति पैदा होगी। इसलिए सुख-दुःख दोनों को छोड़ देना चाहिए क्योंकि इनके कारण उत्पन्न होने वाले राग, भय व क्रोध मनुष्य की बुद्धि को चंचल बनाते हैं, कमजोर बनाते हैं और इस तरह से वह मुनि अर्थात् मननशील नहीं बन सकता तथा ब्रह्म में भी स्थिति नहीं हो सकती। जैसा कि पहले भी बताया जा चुका है - **न प्रहृष्येत्प्रियं .....।** (श्रीगीताजी ५/२०) तुम प्रिय वस्तु को पाकर सुखी होना बंद कर दो तथा अप्रिय वस्तु के प्राप्त होने पर दुःखी होना, घबराना छोड़ दो। उद्वेग से जब मनुष्य घबराता नहीं है, तब स्थिरबुद्धि वाला होता है, कभी मोह पैदा नहीं होता। सुखी होना भी मोह है, घबराना भी मोह है, क्रोध करना भी मोह है, उदास होना भी मोह है। अप्रिय वस्तुएँ 'मोह' उत्पन्न करती हैं। मोह कब होता है? जब बुद्धि चंचल होती है। स्थिर बुद्धि है तो मोह नहीं होता और मनुष्य ब्रह्म में स्थित हो जाता है। 'स्थिरबुद्धिरसम्मूढो ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थितः' ब्रह्मविद् तथा ब्रह्म में स्थिति होना - दोनों बातें एक ही हैं। ब्रह्म को हम तभी जान सकेंगे, ब्रह्मवेत्ता हम तभी बनेंगे जब सारे संसार को जीत लेंगे।

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः।।

(श्रीगीताजी ५/१९)

जिसका मन समानता में स्थित हो गया, उसने यहाँ

जीते जी ही संसार को जीत लिया। समानता क्या है? सारा संसार निर्दोष ब्रह्म है, कहीं जरा भी गड़बड़ी नहीं है; सब कुछ ब्रह्म है। जब बुद्धि में ऐसी समझ आ जाती है कि छोटा-बड़ा कोई नहीं है, सब समान ब्रह्म है। अच्छा-बुरा नहीं, सब ब्रह्म है; जब यह ज्ञान होता है, तब मनुष्य ब्रह्मवेत्ता बनता है और ब्रह्म में उसकी स्थिति हो जाती है। उपनिषद् का एक वाक्य है – **"ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति"** अर्थात् ब्रह्मवेत्ता वह है जो ब्रह्म बन गया। श्रुति कहती है – ब्रह्म को किसने जाना, उसने जाना जो ब्रह्म हो गया। अतः ब्रह्म होने के बाद ही ब्रह्म को जाना जा सकता है। बिना ब्रह्म हुए 'ब्रह्म' को नहीं जाना जा सकता। गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी कहा –

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई।
जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई॥

(श्रीरामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड -१२७)

तुमको जानने वाला तुम्हारा ही स्वरूप बन जाता है। 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति' – ब्रह्म को जो जान जाता है, वह ब्रह्म ही बन जाता है। ब्रह्म को जानना क्या है ?

'निर्दोषं हि समं ब्रह्म' – संसार सब कुछ निर्दोष ब्रह्म है, कहीं कुछ भी खराबी नहीं है, ऐसी जिसकी दृष्टि है, उसकी ब्रह्म में स्थिति हो गयी है। उपनिषद् का जो वाक्य है – 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति', वही बात भगवान् ने भी कही है – ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थितः – 'ब्रह्म' को जो जान गया, वह ब्रह्म में स्थित हो गया, वह दुनिया में नहीं है। ऐसी स्थिति को प्राप्त करने के लिए प्रिय वस्तु को पाकर प्रसन्न मत हो, जैसे – मान-सम्मान, धन-संपत्ति को प्राप्त करके हम प्रसन्न होते हैं तो हम 'ब्रह्मवेत्ता' नहीं बन सकते। इसी प्रकार अप्रिय वस्तु अपमान, हानि आदि पाकर यदि हम उदास होते हैं तो हम 'ब्रह्मवेत्ता' नहीं बन सकते। इसलिए ये सब क्रियाओं में देखना चाहिए। जानकार लोग इन्हीं लक्षणों से पहचान लेते हैं कि इस व्यक्ति में कितना ज्ञान है ? जैसे – जब राजा रहूगण ने जड़भरतजी को देखा कि इसको हमने फाँसी की सजा देने का हुक्म सुनाया किन्तु फिर भी यह नहीं घबराया, अतः यह 'ब्रह्मवेत्ता' है; तुरंत ही वह जड़भरतजी के चरणों में गिर पड़ा। यह लक्षण है 'ब्रह्मवेत्ता' का। एक क्षण में ही उनके लक्षणों को देखकर रहूगण 'जड़भरतजी' को पहचान गया और बोला कि आपके चित्त में विकार नहीं है। ('विकार' का अर्थ है -चंचलता) आप विश्वसुहृद भगवान् के सखा हैं क्योंकि आपमें साम्य (समत्व भाव) आ गया। साम्य या समानता कब आती है ? जब वीताभिमति (अहंशून्यता) आती है। 'अहं भाव' मन को गड़बड़ कर देता है। अहं से संतुलन बिगड़ जाता है। 'वीताभिमति' माने अहं चला गया। 'अहं' ही उछलता- कूदता है, रोता है, चिल्लाता है, क्रोध करता है। ये सारी क्रियाएँ 'अहं' के कारण होती हैं। भगवान् ने इस बात को भागवत में कहा है कि 'अहं' से ही सारे विकार उत्पन्न होते हैं –

शोकहर्षभयक्रोधलोभमोहस्पृहादयः।
अहङ्कारस्य दृश्यन्ते जन्ममृत्युश्च नात्मनः॥

(श्रीभागवतजी ११/२८/१५)

'अहं' से ही शोक होता है, 'अहं' ही रोता है, 'अहं' ही खुश होता है, 'अहं' ही डरता है, 'अहं' ही क्रोध करता है, 'अहं' ही लोभ पैदा करता है, 'अहं' से ही मोह उत्पन्न होता है, 'अहं' से ही इच्छायें उत्पन्न होती हैं, जन्म भी अहंकार का होता है, मृत्यु भी अहंकार की होती है; ये नौ चीजें अहंकार के कारण होती हैं। इसीलिए रहूगण 'जड़भरतजी' को पहचानकर बोला कि निश्चित रूप से आप महापुरुष हैं क्योंकि आपमें विकार नहीं है, आप भगवान् के सखा हैं। जो भगवान् का सखा, भगवान् का भक्त होता है, उसमें अहंकार नहीं होता है।

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी॥

(श्रीगीताजी १२/१३)

भक्त 'निर्मम' होता है, उसमें ममता नहीं होती, अहंकार नहीं होता, सुख–दुःख में समान होता है, क्षमावान होता है; उसे कुछ भी कह दो, वह उत्तर नहीं देता है, बकबक नहीं करता, जैसे - मूर्ख आदमी चिल्लाता रहता है, बोलना बंद नहीं करता, लोग रोकते हैं लेकिन रुकता नहीं है। ये सब मूर्खो के लक्षण हैं। रहूगण ने जड़भरतजी से कहा कि आप कुछ नहीं बोल रहे हैं, इसलिए आप वीताभिमति हैं, भगवान् के सच्चे भक्त हैं।

श्री पंडित जी डॉ रामजीलाल शास्त्री जी द्वारा, रस कुंज, गहवर वन, बरसाना में श्रीमद्भागवत कथा

श्री राधा मान बिहारी लाल जी के दर्शन (अक्षय तृतीया)

श्री श्री अक्षय युगल सरकार , रस मण्डप

श्री श्री रस युगल सरकार

श्री चिंताहरण महादेव

RNI Reference No. 1313397 - Registration No. UP BIL-2017/72945 - Title Code UP BIL-04953
Postal Regd. No. MTR 093/2021-2023
श्री मान मंदिर सेवा संस्थान के लिए प्रकाशक/मुद्रक एवं संपादक राधाकांत शास्त्री द्वारा Gupta Offset Printers A -125 /1, Wazirpur Industrial Area, New Delhi -52 से मुद्रित एवं मान मंदिर सेवा संस्थान, गह्वर वन, बरसाना, मथुरा (उ.प्र.) से प्रकाशित